तीन आँखों वाली मछली

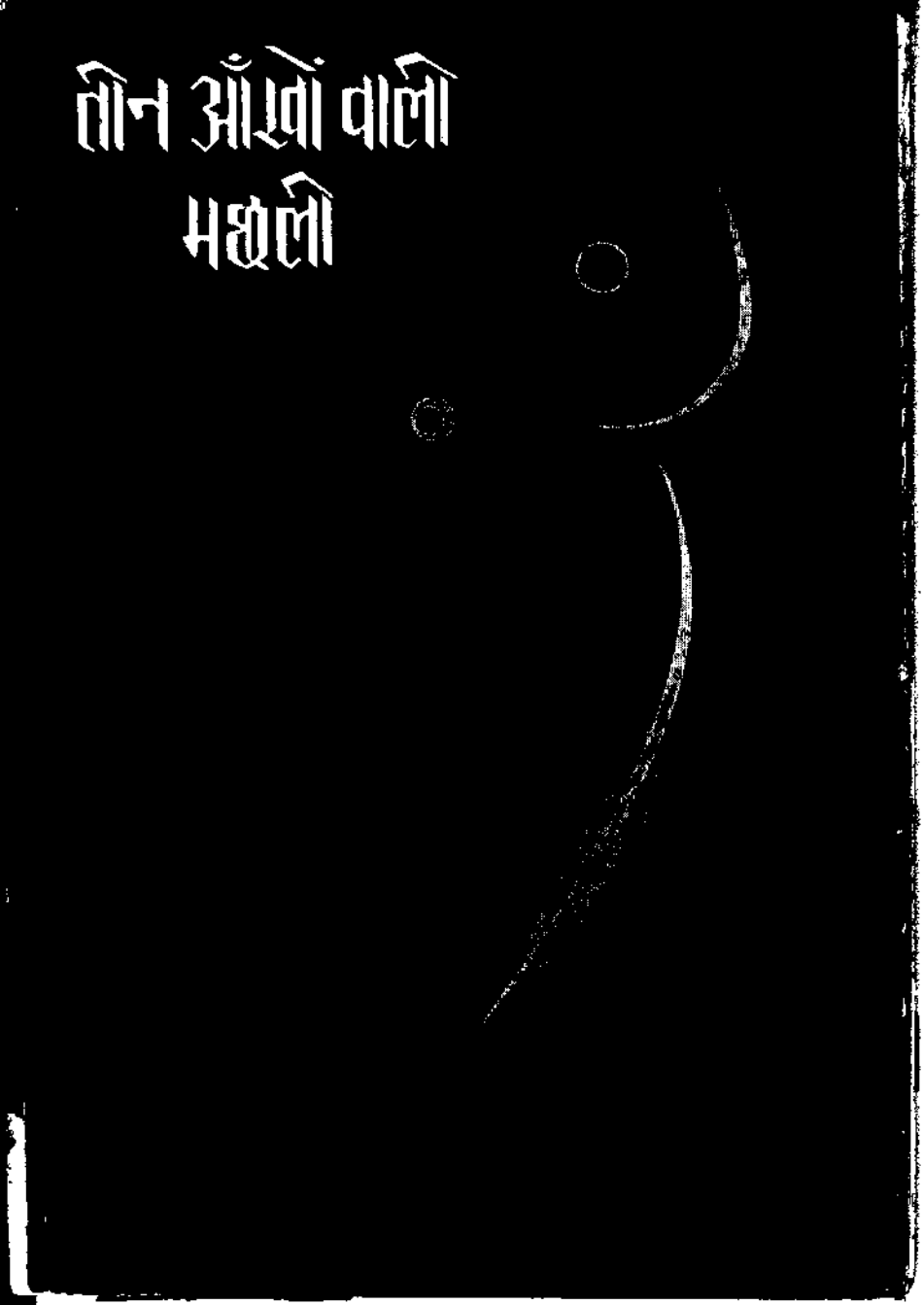

तीन आँखों वाली मछली

लक्ष्मीनारायण लाल

प्रकाशक
रामनारायणलाल बेनीप्रसाद
प्रयाग

प्रथम संस्करण १९६०

*

मूल्य : एक रुपया पचास नये पैसे

*

प्रकाशक :
रामनारायण लाल
बेनी प्रसाद
इलाहाबाद–२

*

मुद्रक :
सीताराम गुप्ठे
लीडर प्रेस
इलाहाबाद

डियर धर्मवीर भारती को
सप्रेम

हिन्दी नाटयधारा की इस गतिविधि को प्राय: सभी वर्तमान नाटककार और रंग-समीक्षक स्वीकार करते हैं कि हिन्दी नाटयलेखन में स्पष्टत: दो विभिन्न धारायें रही हैं : एक व्यावसायिक धारा, जिसमें नाटक के साहित्यिक मूल्यों की उपेक्षा थी, और दूसरी विशुद्ध साहित्यिक धारा, जिसमें व्यावहारिक तथा तत्कालीन रंगमंच के प्रति उदासीनता थी। इससे हिन्दी के रंगमंच-निर्माण और विकास में कितनी क्षति हुई है, इस तथ्य से प्राय: सभी रंगकर्मी और नाटय-विद्यार्थी अवगत हैं।

हिन्दी की यह अजीब विरासत, भविष्य की नाटय दिशा में आ खड़ी हुई।

विरासत विरासत ही है।

और इससे मुक्त होकर वृहत्तर धरातल पर अपने देश की गरिमापूर्ण, और विशुद्ध रंगधर्मी परम्पराओं और उनसे उद्‌भूत नयी नाटय रूढ़ियों से धर्म-निष्ठ होना कितना महत् कार्य है।

पर अभी कल तक जो इसी विरासत को लेकर इस क्षेत्र में लिख रहे हैं, वह सम्पूर्ण अपने-आप में चिन्त्य है।

देश की स्वतंत्रता के बाद स्वभावत: हमारी चेतना में रंगमंच के प्रति एक नया उन्मेष आया। पर यह उन्मेष किसके बूते-सहारे कब तक अपने-आप में उल्लसित रहे ? यह प्रश्न है। क्योंकि इसका मूलाधार अन्तत: नाटय कृति है—नाटक है, जिसके ऊपर रंगमंच का व्यापक विधान स्थिर होता है और उसे अपना मूर्तस्वरूप मिलता है—जिसे कोई बड़े गौरव से कहता है कि यह हमारा रंगमंच है, हमारी भाषा और देश का रंगमंच है।

— क —

तो उस उन्मेष के फलस्वरूप नाटचलेखन में जो अपूर्वगति आयी उसका लेखा-जोखा बड़ा मनोरंजक है।

अनुवादों के अतिरिक्त मौलिक स्तर पर लिखे जाने वाले नाटकों की (पाठ्यक्रम के लिए लिखे जाने वाले ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों की अवाध धारा को छोड़ कर) अनेक गतियाँ प्रकट हुईं : पहली गति—फिल्मी कथा और उसकी रचना का अनुकरण, दूसरी गति—पृथ्वी थियेटर के नाटक और रंगविधान की प्रेरणा से, तीसरी गति—सस्ते, अतिरंगमंचीय (?) और भद्दे मजाकों, हास्यास्पद स्थितियों और अपनी ओर से खींच-तान कर खूब गढ़े हुए कथानकों और तदनुरूप पात्रों के आधार पर लिखे गये नाटक। और चौथी गति उन नाटच रचनाओं से निर्मित हुई, जो अपने मूलरूप में कभी रेडियो एकांकी थे, पर बाद में आवश्यकता-सुविधानुसार पूर्ण नाटक बना दिये गये·····।

उन्मेष के असंस्कृत क्षणों में ये सब गतियाँ स्वाभाविक थीं। ये सब उसी विरासत की ही परिणति में आती हैं। इस क्षेत्र में ऐसा होता ही है।

पर ऐसा क्यों ?

नाटचलेखन क्षेत्र में नया लेखक जब नाटक लिखने चलता है, उसके ऊपर ये दो प्रभाव और प्रेरणायें सर्वाधिक रूप से कार्य करती हैं: जो कुछ उसने संवेद्य रूप से अभिनय और रंग के नाम पर देखा-सुना है, जैसे सबसे अधिक उसने फिल्म देखा है और संभवतः कभी उसने पृथ्वी थियेटर देखा है, अथवा कुछ और सुना है—उसकी प्रत्यक्ष प्रेरणा और छाप उसकी कला पर आती है।

और ?

जो उसका आसन्न समीपस्थ नाटच साहित्य और उसकी प्रकृति रही है—वह, और उसकी सम्पूर्ण रचना-शिल्प और दृष्टिकोण उसके ऊपर कार्यरत् रहते हैं।

पहले का मनोरंजक उदाहरण स्वभावतः हिन्दी मंच अनुष्ठान में सर्वाधिक स्पष्ट होता है, कि जिस अभिनेता को देखिये, वह या तो पृथ्वीराज के भूत को अपने सिर पर लिये आयेगा, या दिलीप कुमार, राजकपूर बन अवतरित होगा।

उसके नाटक के कथानक का वही उतार-चढ़ाव, वैसे ही काल्पनिक पात्र,

वही फिल्म की हास्य स्थितियाँ और वही सारा विधान। कथोपकथन लेखन की प्रकृति तो हू-बहू वही :

फिल्मी !

रेडियायी—'रमेश ! तुम चले जाओगे ?'

'हाँ, शीला ! जाना ही होगा।'

'तो रमेश, तुम मुझे भूल तो नहीं जाओगे ?'

'नहीं शीला, रमेश अपनी शीला से अलग कभी जी नहीं सकता।'

'रमेश ! रमेश ऐसा न कहो, शीला तुम्हारी है,
शीला सदैव रमेश की है। रमेश···रमेश ! शीला···।'

शीला रमेश
शीला रमेश !

हिन्दी का आसन्न गत नाटच साहित्य, जो निस्संदेह रंगमंच की दृष्टि से लिखा गया है, उसका रंग-शिल्प प्रायः 'इब्सन' और 'चेखव' की नाटच रेखाओं के भीतर है। 'इब्सन' और 'चेखव' अपने अपने युग और भाषा के महान् कलाकार थे। उनका रंग-शिल्प उनके देश की प्रकृति, उनकी नाटच परम्परायें भाषा-स्वभाव, उनकी विशेष सामाजिकता की प्रेरणा से उद्भूत और उपलब्ध है। उनकी नाटच महिमा के संस्पर्श से हम आनन्दविभोर हो सकते हैं, उनकी रंग-कला को अनुभूत कर हम उस नशे में झूम सकते हैं, पर हम कितना भी क्यों न चाहें, उन्हें कभी अपने घर, अपने मंदिर में नहीं स्थापित कर सकते। जो देवता जहाँ का है, जिस भूमि और युग का है, उसकी पूजा, शोभा और महिमा वहीं है। वहाँ से उसे अन्यत्र खिसकाते ही वह किसी संग्रहालय की निर्जीव वस्तु भले ही हो सकती है, पर वह 'वह' नहीं रह सकता !

पिछले खेवे के अनेक उल्लेखनीय नाटकों की रचना-प्रक्रिया पर इस रंग-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है।

और हिन्दी में इस रंगदर्शन से उत्पन्न स्थिति बड़ी विकट थी। जो नाटक इस क्षेत्र में पहले से स्थापित थे, वे अपने-आप में कितने सफल, कला-चातुरी के

कितने अच्छे उदाहरण क्यों न रहे हों, पर उन में कहीं से भी, कोई दिशा-संकेत या क्षेत्र-निर्देश की गुंजाइश न थी। बल्कि उन से जैसे आगे का रास्ता ही बंद था। समूचा हिन्दी नाटय लेखन एक ऐसे ड्राइंग रूम में आ बंद हुआ, जिसमें खूब बड़े-बड़े सोफा सेट लगे थे, बड़े करीने से सारी वस्तुएँ अपनी-अपनी जगह सजायी हुई थीं, मजाल क्या कि छोटी-से-छोटी चीज कहीं खिसकी नजर आये—दीवारें पालिश से चमाचम थीं, और कमरे का पूरा ब्यौरा नाटककार के पास था, जैसे उसने 'हेडा गैब्लर' और 'चेरी आर्चेड' की मालकिन से उस ड्राइंग रूम का अभी 'चार्ज' लिया हो—पर दुर्भाग्यवश उस बंद ड्राइंग रूम की कुंजी ही कहीं उससे गायब हो गयी !

बंद ड्राइंग रूम में बैठे हुए लोगों की केवल बातें ही सुनायी पड़ती थीं, जो थोड़े ही समय बाद पूर्ण होकर खत्म हो गयीं, या अपने प्रसंग के साथ ही सहसा समाप्त हो गयीं। और ऐसी समाप्ति कि आगे के लिए कोई दिशा और क्षेत्र जैसे हाथ पसारे नहीं सूझ रहा था। नाटय लेखन में वही बंद ड्राइंग रूम हमें सदा घेरता रहा, और मंच-अनुष्ठान में सदैव वही बड़ा-सा सोफा हमें स्टेज से घूरता रहा—जैसे पुराने क्रिश्चियन बँगलों के बरामदे में कोई रिटायर्ड खुर्राट साहब हर आगन्तुक को 'बुलडॉग' की तरह देखता है।

●

इधर खूब नाटक की चर्चा होती है। जितने हिन्दी में कुल नाटक नहीं, उनसे दूनी रंग-संस्थायें चारों ओर खुल गयीं। अब क्या हो ?

नाटक खेलना चाहिये !

नाटक लिखना चाहिये !

तो अमुक नाटक 'ब्राड्वे हिट' है। अमुक फ्रांस की 'हिलेरियस कामेडी' है, वह इटली और स्पेन का 'सिम्बालिक प्ले' है। वह अमेरिका का 'थ्रिल' है, वह इंगलैण्ड का सफल 'क्राइम प्ले' है, वह 'टैनिसी विलियम्स की अर्धनग्न नारी नाटक है—'कैट ऑन हॉट टिन रूफ' और वह 'ब्रेक्ट' का नया प्रयोग है—'थ्री पेनी ओपेरा' 'मदरस कॉरेज' !

भाई ! जल्दी-जल्दी में अपना रंगमंच बनाना है, अविलम्ब उसके खेलने के लिए

नाटक की पांडुलिपियाँ तैयार कर लेनी हैं। फिर यही करना होगा—'कहीं का पत्थर, कहीं का रोड़ा !' अरे ! कहने को तो हमारा रंगमंच भवन खड़ा हो जाय, ताकि हम कुछ तो विदेशी अतिथियों को यहाँ दिखा सकें !

इस प्रकार जहाँ हमारे समीपस्थ नाटककार ने पश्चिम के आधुनिक रंगमंच के महानतम नाटककारों—'इब्सन', 'चेखव' की नाटयकला से प्रेरणा ली, वहाँ इन उन्मेष के वर्षों में हमने पश्चिम के प्रायः साधारण और निकृष्टतम नाटय-कृतियों से प्रेरणा लेनी चाही है।

●

इतिहास की गति कितनी महिम और कितनी क्रूर है ! महिम कि उसने हमें स्वतंत्रता दी। सांस्कृतिक पुनरुत्थान के फलस्वरूप हमें रंगमंच-निर्माण की दिशा में नयी सबल प्रेरणा मिली, गति प्राप्त हुई—पर उसकी क्रूर गति यह कि उसने हमें धैर्य्य चित्त से कुछ सोचने-विचारने तक का समय न दिया। उसने हमारे बीच बहुत जल्दी नाथ दी, और उसने झट हमें संसार के अन्य देशों के परम्परा पुष्ट रंगमंच और नाटक के सामने खड़ा कर झूठमूठ की होड़ में, हममें हीनग्रंथि की भावना डालनी शुरू कर दी। और दुर्भाग्यवश यदि कहीं यह भावना यहाँ जड़ जमा ले गयी और यदि हम पश्चिम के आधुनिक, वर्तमान अथवा सम-सामयिक नाटकों के मुखापेक्षी हो गये, तो निश्चय ही इसका फल भयानक होगा।

रंगमंच के नाम पर हम सस्ते, नंगे, चटपटे, गर्मागर्म विदेशी नाटकों के हिन्दी 'कार्नवाल' अवश्य रच सकते हैं, जैसा कि हम बम्बइया हिन्दी फिल्मों में हॉलीवुड की प्रेरणा से कर रहे हैं—

पर हम इस तरह कभी भी अपना नाटक और रंगमंच नहीं रच सकते !

हमारी तरह ऐसी ही स्थिति इंगलैण्ड के परम्परापूर्ण उन्नत नाटक साहित्य और रंगमंच के सामने एक दिन आयरलैण्ड की भी थी। आइरिश थियेटर इंगलैण्ड की छाया में पनप ही नहीं पा रहा था। उसके सारे प्रयत्न जैसे विफल हो रहे थे। बहुत ढूँढ़ने और सिर मारने पर भी उसे कोई रास्ता ही नहीं मिल पा रहा था, और एक दिन उनके सत् संघर्षों ने उन्हें यह दृष्टि दी :

आयरलैण्ड के नाटक
आयरलैण्ड के जीवन से ओत-प्रोत
आयरलैण्ड में
आयरलैण्ड के नाटककार द्वारा लिखे जायेंगे
और वे आयरलैण्ड के निर्देशक, रंग-शिल्पी तथा
आयरलैण्ड के अभिनेताओं द्वारा
आयरलैण्ड के दर्शकवर्ग के लिए प्रस्तुत होंगे ।

हमारा ही जीवन, हमारा नाटककार, हमारा प्रस्तुतकर्ता और हमारे ही अभिनेता तथा हमी उसके दर्शक—ये सारे तत्त्व कितने सुलभ और प्रीतिकर हैं। हम में अपने ही प्रति कितनी आस्था जगाने वाले हैं ! पर इन्हें पहचानना, इन्हें अनुभूत करना और इन्हें परस्पर एक ही सत्य बिन्दु पर संगठित करना कितना महान् कार्य है !

किसी भी देश का रंगमंच वस्तुतः इसी मूलमंत्र और इसी महान् कार्य में है। इस दर्शन को जो देश, जो संस्कृति जितने सीमित और असीमित धरातल पर ग्रहण करती है, वहाँ का रंगमंच वैसा ही अपना स्वरूप पाता है। यदि वह किसी वर्ग विशेष की ही सीमा में ग्रहण किया गया, तो वहाँ का रंगमंच स्वभावतः एक-वर्गीय होगा, और जहाँ यह दर्शन अपने समस्त देश को ग्रहण कर कार्यान्वित किया जाता है, वहाँ का रंगमंच राष्ट्रीय रूप धारण करता है।

●

सम्प्रति हिन्दी नाट्यलेखन की पहले जो चार गतियाँ बतायी गयी हैं, वह सम्पूर्ण चित्र का केवल एक पक्ष है।

इसका दूसरा पक्ष निश्चय ही मांगलिक और आस्थाजनक है। इसमें विचार और धैर्य्य है। इसमें उतनी गति चाहे न हो, पर इसके सामने अपनी वह दिशा और गन्तव्य स्पष्ट है, जिससे हम बड़े विश्वास के साथ अपनी भुजा उठाकर स्पष्ट कह सकते हैं कि, हमारा रंगमंच पश्चिम के रंगमंच से सर्वथा भिन्न होगा, और निस्संदेह हिन्दी रंगमंच वह होगा जो समूचे मध्य देश की जीवन प्रकृति,

उसकी संस्कृति और उसके समस्त राग-विराग, दुख-सुख का सजीव प्रतिनिधित्व करेगा। हमारे उस रंगमंच के सारे तत्त्व, सारे उपादान हमारे ही द्वारा किये हुए नाटकीय प्रयोगों तथा सतत् अभ्यासों के बीच से जुटाये गये होंगे, और उस पर हमारा ऐसा हस्ताक्षर होगा, जिसके अंतस में हमारी मौलिक और नयी नाट्य-रूढ़ियाँ उनको भी नयी दिशा दे सकेंगी, जिनकी अनेक नाट्य उपलब्धियाँ हमारे और उनके सामने हैं, और फिर भी जो इधर इस क्षेत्र में गतिरोध अनुभव कर रहे हैं।

●

ऊपर जो कुछ भी कह गया हूँ, उसका मैं एक अभिन्न अंग हूँ। उन चारों अस्वस्थ गतियों से मैं ही गुजर कर आया हूँ। जो कुछ भी मैंने कहा है, उसे मैंने पूर्णतः पहले भोगा है, इसलिए जो कुछ मैं कह रहा हूँ, उसकी शत-प्रतिशत जिम्मेदारी अपने सिर-माथे लेता हूँ।

मैं इसकी पीड़ा से अनुरक्त हूँ !
मैं इसकी आशा से अनुभूत हूँ !

मुझे वह अभी नहीं प्राप्त हुआ, जिसकी तलाश में मैं निकला हूँ—यह सत्य मुझे निरंतर बल देता है। शायद मुझे वह कभी न प्राप्त हो, और उसके लिए मुझे अन्त तक इसी तरह तलाश करनी पड़े—इसे मैं तब भी अपना परम सौभाग्य मानूँगा। ईश्वर करे, इस प्रक्रिया से 'वह' आपको ही मिल जाय। क्योंकि नाटक, रंगमंच किसी एक की उपलब्धि नहीं होती, उसका तो सहज एक आत्मदान होता है। उपलब्धि समूचे युग की होती है, जिसके अभ्यन्तर से वह नाट्यधारा प्रवाहित होती है।

आज से प्रायः चार वर्ष पूर्व इस नाटक की कुछ मूल यथार्थ सामग्री मुझे कई जगह से अपने-अपने ढंग से बिखरी हुई मिली, जैसे फसल कट जाने के बाद उसके सुन्दर अन्न धरती पर छुट-बिखर जाते हैं।

उस यथार्थ जीवन का अपना आदि और उसका अपना अन्त मेरे सामने है—उसका आकर्षण भी, विकर्षण भी। पर इससे नाटक नहीं लिखा गया। जितना ही

बनाना चाहा, उतना ही बिगड़ता गया। इसका मजाक इसी नाटक में बद्दू ने खूब बनाया है!

तब मैंने अनुभव किया कि नाटक लिखना एक तटस्थ जीवन जीना है—जो जीवन प्रत्यक्ष भौतिक स्तर पर घटा है, उसी को सर्वथा दूसरे ही स्तर पर जीते हुए अनुभूत करना, नाटक रचना है।

और भारतीय भूमि पर अपनी जीवन-प्रकृति के अंतस से अपने रंगमंच की नयी रूढ़ियों के अन्वेषण में नाटक लिखना, तटस्थ जीवन 'आनन्द' से जीना है: छोटा मन और छोटा यथार्थ दृष्टिकोण लेकर नहीं, बल्कि बहुत बड़े मन से, छोटे यथार्थ में बड़ी कल्पना अनुरंजित कर। यथार्थ घटना जब कल्पना में मिलकर कथा बन जाती है, और यथार्थ चरित्र जीवन-संग्राम में जूझकर अपनी दृष्टि से पात्र हो जाते हैं, और वे अपनी सहज अभिव्यक्ति के लिए जब स्वयं अपना जीवन मंच रचकर उस पर स्वतः गतिमान हो जाते हैं, और उनकी गति में जब उनके जीवन का सारा अभिनय हमें वास्तविक सुख-दुख, व्यंग, करुणा का निर्मल आनन्द देने लगता है, तब नाटक की कच्ची सामग्री खूब पककर, सजकर रचना के लिए तैयार होती है। ये सब नये अनुभव मुझे इस नाटक की लेखन-प्रक्रिया के बीच हुए हैं। मैं कृतज्ञ हूँ इस नाटक का।

यह नाटक लिखते-लिखते जैसे इस नाटक के संग मैंने एक अनुभवपूर्ण और सुखद यात्रा की है।

इस नाटक को मैंने चार बार लिखा है और इसके चारों नाट्य आलेख मेरे लिए उसी भाँति महत्त्वपूर्ण हैं, जैसे किसी अनुभवहीन पर्वतारोही के लिए लम्बा समतल मैदान, फिर पहाड़ी रास्ता, फिर एक चोटी, फिर दूसरी और·····।

यह नाटक लिखकर मैंने यह स्पष्ट अनुभव किया है कि नाट्यलेखन में पूर्ण यथार्थवादी भूमि मन को बेहद उबा देती है; आगे को वह जैसे सारा रास्ता ही रोक लेती है, और इस तरह नाटक लिखना जैसे निरपराध दंड भोगना है। और यही दंड इस तरह लिखे हुए नाटक के खेलने, प्रस्तुत करने और देखने में क्रमशः दूना-तिगुना बढ़ता जाता है।

मैंने यह भी जाना कि हमारे रंगमंच की नाट्य सामग्री को जीवनमय, रस-

वंत बनाने के लिए हमारे सांस्कृतिक जीवन की गाथायें (मिथ्स) कितनी महत्त्व-पूर्ण हैं। इनसे केवल यथार्थ को दर्शन ही नहीं मिलता, वरन् वह सब हमारे जीवन में इस तरह पिरो उठता है कि हम उसकी डोर पकड़कर जीवन में गतिमान हो जाते हैं। जो मृत्यु एडवोकेट श्यामबिहारी दास के लिए प्रथम अंक में भय है, त्रास है, वही मृत्यु आगे संघर्ष है, और उत्तरोत्तर वही मृत्यु उन्हें मुक्तिदायक अनुभूति देती है—जैसे पुराण की गाथा की वह छोटी-सी मछली एक जीवन को छोड़ती हुई, उससे आत्म-विकास करती हुई मृत्यु के अंधकार से चलकर मुक्तिमय, गहन प्रशस्त सागर में पहुँच जाती है। इस गाथा-अनुरंजन से नाटक में यथार्थ जीवन से प्राप्त वह घटना, वह विशेष चरित्र, जो पहले इतने असामान्य और नाटकीय लगते थे, उन सबको जैसे अपनी सनातन-सहज भूमि मिल गयी।

यह नाटक मेरे संग स्वतः 'ज्योतिषी' से चलकर 'तीन आँखों वाली मछली' की संज्ञा को प्राप्त हुआ है—इस जययात्रा का श्रेय उसी छोटी-सी मछली को है, जिसमें भविष्य और विकास की सारी निष्ठा छिपी है, और इस संदर्भ में मछली की तीसरी आँख कमलनयन से मिली है, जिसने उस अदृश्य मछली से अपने पिता का साक्षात्कार कराया है।

इलाहाबाद
१३ जुलाई '६०

लक्ष्मीनारायण लाल

तीन आँखों वाली मछली

पात्र

श्यामबिहारी दास : एडवोकेट
रामचन्दर : एडवोकेट साहब के बड़े लड़के
गोपाल : मझले लड़के
कमलनयन : सबसे छोटे पुत्र
बब्बू : एडवोकेट साहब का भतीजा
हरेराम : पुरोहित
फोटूबाबू
फूफाजी
दो पूजक, और
लालता आदि

पहला अंक

[एडवोकेट श्यामबिहारी दास के बँगले का एक बरामदा—सामने और दायीं ओर लॉन में खुला हुआ।

सामने दीवार में दायीं ओर एक दरवाजा, जो एडवोकेट साहब की बैठक और पढ़ने-लिखने के कमरे में खुलता है। उससे हटकर बायीं ओर दूसरा दरवाजा, जिससे लोग भीतर आते-जाते रहते हैं।

दोनों दरवाजों के बीच फर्श पर दो मोढ़े रखे हैं। दायीं ओर एक कुर्सी पड़ी है, शेष कुछ नहीं। सामने दीवार में एडवोकेट साहब का एक बड़ा तैल-चित्र टँगा हुआ है।

अक्टूबर के दिन हैं। तीसरे पहर के दो बजनेवाले हैं। पर्दा हटने के कुछ ही क्षणों बाद, अपने कमरे से श्यामबिहारी दास तेजी से प्रवेश करते हैं।]

श्यामबिहारी : कमलनयन ?···किसने नाम लिया कमलनयन का ! (*आज्ञा भाव से पुकारते हुए*) रामचन्दर !····· गोपाल ! कोई नहीं ! (*अपना चित्र देखते हुए*) मैं अकेला हूँ। पर अब मेरा साथ कोई क्यों दे ? अब मेरे पास बचा ही क्या है ? सब कुछ मैंने बाँट दिया-लिख दिया। (*चारों ओर एक दृष्टि में देखते हुए*) यह सब कुछ अब मेरा नहीं है। (*चित्र में दृष्टि गाड़े*) पर मैं हूँ·····और सदा रहूँगा !

[बायीं ओर से हरेराम का प्रवेश, हाथ में छाता लिये हुए, सिर पर पगड़ी, लम्बी धोती पर बन्द गले की कोट, माथे पर चन्दन, लम्बी मोंछ ।]

हरेराम : आशीर्वाद ! परम शान्ति ! ···सरकार मैं आपके साथ हूँ ।

श्यामबिहारी : मेरे साथ ? (*हँसने का असफल प्रयत्न कर के*) मेरे साथ कोई नहीं है !

[तेजी से बाहर दायीं ओर निकल जाने को होते हैं, सहसा रुककर लौटते हैं ।]

श्यामबिहारी : सुनो ! मैंने अपनी सारी सम्पत्ति रामचन्दर और गोपाल को दे दी । इसलिए नहीं कि वे दोनों मेरे पुत्र थे, मेरा पुत्र कमलनयन भी था । (**रुककर**) इसलिए कि वे दोनों, मुझे मेरे नाम—श्यामबिहारी दास को अमर रखेंगे । हरेराम ! यह भी याद रखना, वह ज्योतिषी, उसकी वह भृगुसंहिता वह केवल (*सहसा रुककर*) कुछ नहीं ! सत्य मैं हूँ । मैं अपने जीवन और मृत्यु दोनों को देख रहा हूँ । मुझे कोई भय नहीं, मैं दोनों से सचेत हूँ ।

[पृष्ठभूमि में सहसा मुखबाजा (माउथ आर्गेन) का संगीत उभरता है ।]

श्यामबिहारी : मुझे जल्दी है । मैं जानता हूँ अपने समय का मूल्य !

[तेजी से प्रस्थान । बायीं ओर से बद्दू यह गाता हुआ—

किम् किम् किम् किम् किम् किम्
कें कें कें कें कें कें !

और इसी स्वर-संगति पर बायीं ओर से प्रविष्ट होता है । हाथ में तागे से बँधा हुआ कोई मेढक लिये हुए है । उसी को जमीन पर नचाता हुआ वह गाता घूम रहा है । अपनी गति में बेखबर, उसी नृत्य चाल से कई चक्कर काटता है । बेचारे हरेराम उस तूफान से बचने के लिए इधर-उधर भागते हैं, और चीखते-चिल्लाते तक हैं ।]

हरेराम : हाँ···हाँ···हाँ ! यह क्या है ? यह क्या है रे ?

बद्दू : कनतूतुर है कनतूतुर !
किम् किम् किम् किम् किम् किम् !

हरेराम : बद्दू ! सावधान !

बद्दू : पंडितजी, आपको सादर प्रणाम !

[हाथ जोड़कर नमस्ते करते समय मेढक का तागा उसके हाथ से छूट जाता है ।]

बद्दू : अरे ! बच के ! सावधान पंडितजी ! (*डरे हुए हरेराम से उनका छाता छीनते हुए*) हाँ···हाँ···हाँ···सावधान ! पर मेरे हाथ से बच के तू जायेगा कहाँ ? रुक जा वहीं ! रुक गया ! डरता है ! पंडितजी, यह कनतूतुर नहीं, काल है, महाकाल ! अगर किसी को महज छू भर दे···तो रामनाम सत्य ! (*मारने का अभिनय करता हुआ*) अखबार के राशिफल में आज निकला है—'कनतूतुर से कन्या राशिवालों की मृत्यु !'

हरेराम : (*सभय*) सच ? नहीं···नहीं, नहीं !

बद्दू : (*जैसे हरेराम की रक्षा करता हुआ*) घबड़ाओ नहीं

पंडितजी, यह शत्रु मुझ से बच के नहीं जा सकता! हट जाओ! (*छाते से मारता हुआ*) मार्केष है, मार्केष!

हरेराम : हाय! मेरा छाता!

बद्दू : साक्षात् मार्केष है, मार्केष! घायल होकर यदि निकल गया तो सात पीढ़ी तक बदला लेगा!

[फिर छाते से मारता है।]

हरेराम : अब मर गया! अब मर गया! मेरे छाते का सत्यानाश कर डाला न! दे मेरा छाता!

[हरेराम आवेश में है। बद्दू छाता खोलने लगता है। उसमें से एक छोटा-सा शीशा और कंघी पाकर खिल उठता है।]

हरेराम : (*अपना छाता छीनते हुए*) दुश्चरित्र कहीं के! यहाँ घर में शोक छाया हुआ है···।

बद्दू : (*उसी में*) और यह शीशा···यह कंघी···यह शृंगार!

हरेराम : तुझे पता भी है? तेरे महान् चाचाजी, एडवोकेट श्याम-बिहारी दास कुछ ही दिनों के लिए हमारे बीच में हैं!

बद्दू : अजी छोड़िये उसे! यह काल कनतूतुर आपके प्राण लेने आया था। और आपकी रक्षा मैंने की!

हरेराम : हाँ, हाँ, तू अच्छा लड़का है! पर मेरी बात तो सुनो! तू पढ़-लिख नहीं सका। चार अच्छे आदमियों की संगत भी न तूने की। तुम्हें नौकरी-चाकरी मिलनी असंभव है। सो मेरी बात मान। तू दौड़कर एडवोकेट साहब की शरण जा! तुझे भी कुछ धन अवश्य मिल

जायगा। अब भी उनके पास कुछ धन सुरक्षित है। भृगुसंहिता से प्राप्त उनके इष्टफल में यह लिखा हुआ है—'न्यायकार्ये धन गोपरक्षितः।'

बद्दू : अच्छा! चाचाजी के लड़कों के विषय में क्या निकला है?

हरेराम : 'ज्येष्ठम् विद्याध्यनम्'! बिलकुल सत्य···रामचन्दर बाबू युनिवर्सिटी में अध्यापक हैं। और दूसरे लड़के के विषय में—'राज्यगोष्ठाम च कार्यरतः'। सोलहो आने सही, गोपाल बाबू डिप्टी इंसपेक्टर—सरकारी नौकरी। (*रुककर*) बद्दू, स्मरण रखो—यह भृगुसंहिता पंचम वेद है। इसे सबसे पहले शंकर भगवान् ने पार्वती जी को सुनाया था।

बद्दू : शादी के पहले या बाद में?

हरेराम : (*बिगड़ कर*) शास्त्र के विषय में ज्यादा 'ही ही' मत किया करो। पता है? पार्वती जी ने जरा-सा एक बार इस विषय में हँस दिया था, सो उन्हें अग्नि में भस्म होना पड़ा था। (*रुककर*) सुनो वेद प्रकाश!

बद्दू : क्या कहा वेद प्रकाश? जी नहीं, मेरा नाम बद्दू है।

हरेराम : अच्छा-अच्छा, शान्त! ध्यान से सुनो—तुम्हारे चाचा जी आज से केवल एक महीने के मेहमान और हैं—दो नवम्बर को ठीक ग्यारह बजे रात्रि—उनकी आयु

के बावन साल पूरा होते-होते, बत्तीस घड़ी, तैंतीस पल पर उनका इष्टकाल मार्केष।

बद्दू : (*चित्र की ओर देखता हुआ*) सुन रहे हैं चाचाजी!

हरेराम : और सुनो!

बद्दू : अजी बहुत सुन लिया पंडितजी! चाचाजी कहाँ गये?

हरेराम : अभी किसी काम से गये हैं! सुनो एक बात!

[बद्दू जाने लगता है।]

बद्दू : यह लीजिये अपना शीशा कंघी, और यहाँ खड़े-खड़े शृंगार कीजिये—और चाचाजी की मौत की गमी मनाइये।

[बाजा बजाते हुए प्रस्थान। भीतर से रामचन्दर का प्रवेश।]

हरेराम : बड़े भइया! जै हो···कल्याण हो! यह तो बताइए, कितना क्या-क्या मिला आपको?

रामचन्दर : उतना ही, जो मिलना था। यानी आधा-आधा।

हरेराम : यह कैसा न्याय है आपके पिताजी का!

रामचन्दर : पिताजी के अपने सिद्धान्त हैं, बस!

[बाहर से गोपाल का प्रवेश। देखते ही हरेराम अपनी बात रोककर।]

हरेराम : कहो छोटे सरकार! सब आनन्द मंगल!

गोपाल : पिताजी ने मुझे आर्टिस्ट के पास भेजा था। संगमरमर की प्लेट पर पिताजी ने अपना नाम बनवाया था, उसमें

एक अक्षर कुछ टेढ़ा रह गया था, उसी को ठीक कराने गया था।

रामचन्दर : उधर ठीक दरवाजे के ऊपर वह संगमरमर का प्लेट जड़ा जायगा।

गोपाल : अंग्रेजी, उर्दू और हिन्दी तीनों अक्षरों में अपना नाम बनवाया है। बड़ा भद्दा लगता है, पर कौन कहे

[कहते हुए गोपाल का अन्दर प्रवेश।]

हरेराम : बड़े भइया, सच, क्या-क्या मिला आपको?

रामचन्दर : उन्होंने यह मकान ही ऐसा बनवाया था—दो बराबर हिस्सों के। यह अगला हिस्सा मुझे मिला है, पीछे का हिस्सा गोपाल को।

हरेराम : और हाते की जमीन?

रामचन्दर : वह भी आधी! सब कुछ आधा-आधा! उनकी योजना और विश्वास के आगे कौन क्या कहे?

हरेराम : बड़े भइया! मेरी बात का विश्वास कीजिए—इष्ट-फल में निकला है—पिताजी के पास अब भी धन कहीं छिपाकर रखा है?

रामचन्दर : कह नहीं सकता! पैंतालिस वर्ष की अवस्था में ज्योतिषी की भृगुसंहिता-फल के बाद ही पिताजी ने अपनी वकालत में सही मुकदमों के अलावा गलत मुकदमा लेना बिलकुल छोड़ दिया। इतना बड़ा बँगला बनवाया।

हम दोनों भाइयों को इतना पढ़ाया। गायत्री बहन की शादी की। मेरी शादी की और····· ।

हरेराम : फिर भी यह सत्य है कि कुछ धन अभी बचाकर रखा हुआ है। देखिए, किसके भाग्य में है वह !

[भीतर से गोपाल का प्रवेश ।]

गोपाल : पिताजी कहाँ हैं ?

रामचन्दर : कहीं गये हैं !

गोपाल : हम लोगों के साथ आज अपना फोटो खिंचवाने के लिए कह रहे थे ! पर स्वयं कहीं चले गये !

[सहसा पिताजी का प्रवेश]

श्यामबिहारी : जनाब, मैं उसी के लिए गया था। तुम समझते हो, मैं कहीं घूमने गया था। मैं जानता हूँ, इस जीवन के एक-एक क्षण का मूल्य ! तुम लोगों को क्या, तुम समझते हो, यह जीवन यूँ ही मिल गया है—इसका कोई अर्थ नहीं, कोई मूल्य नहीं। (रुककर) तुम लोग यहाँ इस तरह क्यों खड़े हो ?

हरेराम : सरकार, मैं तो जा रहा था ! जै हो !

[जाते-जाते रुक जाते हैं ।]

श्यामबिहारी : (*रामचन्दर और गोपाल को देखकर*) इस तरह मत खड़े रहो ! बैठो !

[श्यामबिहारी दास कुर्सी पर बैठते हैं। रामचन्दर एक मोढ़े पर ।]

श्यामबिहारी : (*गोपाल से*) तुम भी बैठो न ! मुझे क्या देख रहे हो ?

गोपाल : ठीक है।

श्यामबिहारी : हूँ ! चूँकि मैंने कहा है कि बैठो, इसीलिए·····।

गोपाल : नहीं, मैं छोटा हूँ इसलिए, आप बड़ों के सामने···।

श्यामबिहारी : गोपाल !

[गोपाल चुपचाप बाहर जाने लगता है ।]

श्यामबिहारी : रुको गोपाल, चलो इधर आओ। बैठो, मैं कहता हूँ बैठो।

[गोपाल अनिच्छा से दूसरे मोढ़े पर बैठ जाता है ।]

श्यामबिहारी : पंडित जी, मेरे इष्टफल में जो यह निकला है कि, 'मंत्र तंत्र औषधि वृथा' इसके क्या अर्थ हैं···?

हरेराम : बताया न आपको सरकार, कि अर्थात्···अर्थात् सरकार, मैं अपने मुँह से क्या कहूँ, मेरा हृदय भर आता है।

श्यामबिहारी : हरेराम !

हरेराम : अच्छा हाँ ! अर्थात् सरकार, 'मंत्र तंत्र औषधि वृथा', अर्थात् बावन वर्ष पूर्ण होते ही वह ऐसा मार्केष है कि उसमें मंत्र-तंत्र, एवं दवा औषधि सब बेकार है। अर्थात् वह आपका बड़ा ही शान्तिमय स्वर्गवास का क्षण है—डाक्टर-वैद्य का कोई विघ्न नहीं।

श्यामबिहारी : (*अपने दोनों लड़कों से*) सुन लिया न ! स्मरण रखना इसे !

[उठकर टहलने लगते हैं ।]

रामचन्दर : फोटोग्राफर साहब अब तक नहीं आये !

हरेराम : मैं देखता हूँ, उधर से मैं अपने कपड़े भी बदल आऊँगा !

गोपाल : सवा चार बज गये हैं, देरी हुई तो रोशनी चली जायेगी !

श्यामबिहारी : ओ हो ! तुम मुझे शिक्षा दोगे ? मैं तीन घड़ियाँ रखता हूँ—एक पाँच मिनट तेज, एक पाँच मिनट धीमी, और एक दोनों के बीच में। इस तरह, मैं भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों को एक सँग लेकर चलता हूँ।

[हरेराम और गोपाल एडवोकेट साहब को देखते रह जाते हैं—उनके मुख पर मलिनता और आवेशजनित प्रकाश का क्रम]

श्यामबिहारी : (*घड़ियाँ दिखाते हुए*) यह देखो तीन घड़ियाँ हैं ! एक बताती है, मैं पाँच मिनट पहले भी था, और क्या था ! दूसरी बताती है, पाँच मिनट बाद मुझे क्या होगा। और यह तीसरी बताती है कि यह पाँच मिनट—यह मिनट भी गया—एक महीने में पाँच मिनट और समाप्त हो गया !

गोपाल : पंडितजी !

हरेराम : जा रहा हूँ, जा रहा हूँ (*जाते-जाते*) फोटो में सम्मिलित होने के लिए बद्दू को भी सूचना दे दूँगा ?

श्यामबिहारी : नहीं नहीं !

[हरेराम तेजी से बाहर निकल जाते हैं ।]

श्यामबिहारी : बद्दू मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है।

गोपाल : (*उठते हुए*) आपको पसन्द ही कौन है ? कमलनयन···।

श्यामबिहारी : (*काटते हुए*) क्या कहा ? खबरदार जो उसका नाम मेरे सामने लिया !

गोपाल : कमलनयन का नाम लेने और न लेने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह सदा अपनी जगह पर है। सब कमलनयन नहीं हो सकते। उसका अपना एक व्यक्तित्व था। वह स्वामी था अपने जीवन का। आप कहते हैं कि आपने कमलनयन को त्याग दिया—वह दुश्चरित्र था, क्योंकि वह आपका विरोधी था। मैं समझता हूँ, उसने स्वयं आपको त्याग दिया !

श्यामबिहारी : ओह, तुम गड़े हुए मुर्दे को खोदना चाहते हो ?

रामचन्दर : गोपाल, शान्त हो जाओ !

गोपाल : कमलनयन मेरा आदर्श भाई है। वह कभी मुर्दा नहीं हो सकता। वे अमृत क्षण, उसकी आहत स्मृति मुझमें सदा घिरी रहती है।

यामबिहारी : तो ?

गोपाल : कुछ नहीं।

श्यामबिहारी : तुम हट जाओ मेरी आँखों के सामने से।

रामचन्दर : गोपाल, सुनो मेरी बात···।

गोपाल : मैं कभी आपकी आँखों के सामने नहीं हूँ। आपके सामने कुछ और ही है।

श्यामबिहारी : जबान नहीं बन्द करोगे तुम ?

गोपाल : मैं कुछ नहीं हूँ! हम आपकी मात्र छाया हैं। हममें अपना व्यक्तित्व नहीं है। आपने अपनी योजना के अनुरूप हमें एम० ए० तक पढ़ाया, हमने पढ़ लिया। आपने मुझे सरकारी नौकरी दिला दी, मैं नौकर भी हो गया। इस तरह मैं 'मैं' नहीं हूँ—एम० ए० हूँ, कागज की उपाधि हूँ—नौकर हूँ—आज्ञाकारी हूँ··· शरीर हूँ···।

श्यामबिहारी : गोपाल!

गोपाल : आपने जिस वर्ष भृगुसंहिता में अपना इष्टफल देखा, उसी क्षण से आपने पूरे परिवार और जीवन को अपनी योजना में कसकर बाँध लिया। जो मुक्त था, वह कमल-नयन बन गया। उसे आपकी सम्पत्ति और धन से कोई मोह नहीं था। उसे उसका जीवन प्रिय था, आत्म-सम्मान प्रिय था, इसलिए वह आपका सब कुछ त्याग कर चला गया। पर हमें आपकी सम्पत्ति से, आपसे मोह था, इसलिए हर मूल्य पर हम दोनों भाई आपके साथ हैं।

[बाहर जाने लगता है।]

श्यामबिहारी : रुको! और भी कुछ कहना चाहते हो?

गोपाल : मेरे पास अपना क्या है, जो कहूँगा! और ऐसे कहने का मूल्य क्या है? भीतर की रिक्तता ही मनुष्य को बाचाल बनाती है।

श्यामबिहारी : मुझसे पूछो क्या मूल्य है तुम्हारे इन विष बाणों का! अब मुझे अर्थहीन समझ लिया न! कल तक मैं कुछ और था—अर्थपूर्ण···था शायद कल तक मैं। (*आग्नेय दृष्टि से देखते हुए*) ओह! तुम मेरे जीते जी, मेरे सारे जीवन को उलट देना चाहते हो? पर वह असंभव है। (*व्यंग से*) आज्ञाकारी हूँ! तुमने कब मेरी आज्ञा का पालन किया है? मुझे पता था, तुम सदा मन-ही-मन मेरे विरुद्ध रहे हो। कमलनयन को बिगाड़ने में तुम्हारा हाथ रहा है। फिर भी मैंने तुमसे कितना कहा कि मेरे जीवन-काल में तुम विवाह कर लो, पर तुमने नहीं किया। मैं सब समझता हूँ। मत करो मेरे कहने के अनुसार अपनी शादी। रामचन्दर की शादी मैंने कर दी है। नाती का भी मैंने मुँह देख लिया है। गायत्री बेटी के भी पाँव मैंने पूजे हैं, उसे भी पुत्र है। मेरे सामने मेरी तीन पीढ़ियाँ हैं। मैं इन्हीं में अमर रहूँगा। मेरी सारी कामना पूरी हो गयी है। आज से तीसवें दिन मृत्यु मेरे इस शरीर को ले जायेगी, पर मुझे नहीं ले जा सकती!

[गोपाल कुछ कहना चाहते हैं, पर अपने को रोककर भीतर मुड़ जाते हैं।]

रामचन्दर : पिताजी, आप शान्त हो जाइये।

श्यामबिहारी : मुन्ना कहाँ है?

रामचन्दर : उसके मामा यहाँ रेलवे में बदल कर आये हैं, माँ के संग उन्हीं के यहाँ गया है।

श्यामबिहारी : बिना मेरी आज्ञा लिये हुए तुमने बहू को वहाँ क्यों भेजा? मेरी इच्छा की तुम्हें भी कोई परवाह नहीं रही?

रामचन्दर : आप घर पर नहीं थे। मैंने मना किया था उन्हें, वह माने ही नहीं। पर अब तक तो आ जाना चाहिए, देखता हूँ।

[रामचन्दर भीतर चले जाते हैं।]

श्यामबिहारी : ठीक है।

[अपने कमरे की ओर मुड़ते हैं, उसी क्षण बाहर से बद्दू का प्रवेश। चाचाजी को देखते ही वह लौटने लगता है।]

श्यामबिहारी : क्या है? कैसे आ रहे थे? और भागने क्यों लगे?

बद्दू : आपको देखकर चाचाजी, नमस्ते! चाचाजी, अपने सँग मुझे भी फोटो में शामिल हो जाने दीजिए।

श्यामबिहारी : पहले योग्य बनो, फिर इच्छा करो!

बद्दू : चाचाजी, सोचता हूँ क्या योग्य बनूँ, जब एक दिन मर ही जाना है।

श्यामबिहारी : मेरा मजाक बनाना चाहता है? जाकर मेरी लाइब्रेरी देख! पहले दर्जे से लेकर, एम० ए०, एल-एल० बी० तक फर्स्ट क्लास पास हुआ हूँ।

बद्दू : और मुझे देखिये, मैं हाई स्कूल भी न पास हो सका।

पर चाचाजी, मैं मरना नहीं चाहता! यह बुरी बात है न?

श्यामबिहारी : कौन चाहता है मरना? पर उसे मरना तो पड़ता ही है।

बद्दू : फिर उल्टे उसके लिए इतनी तैयारी क्यों?

श्यामबिहारी : तुम क्या समझोगे इसे? तुम्हें क्या बताऊँ? काश तुमने कुछ पढ़ा-लिखा होता!

बद्दू : अच्छा है चाचाजी, मेरे सिर पर किताबी पढ़ाई का कोई बोझ नहीं है। सुना है, मोटी-मोटी किताबें कहती हैं, और आप भी उसी के अनुसार कहते हैं कि केवल शरीर मरता है, आत्मा कभी नहीं मरती, इसलिए वह कभी नहीं मरता, उसको फिर दूसरा शरीर मिल जाता है—पर उसे देखता कौन है, पहचानता कौन है? आदरणीय चाचाजी, मुझे कुछ समझ में नहीं आता!

श्यामबिहारी : फिर जाओ यहाँ से! छोटा मुँह बड़ी बात! तुम किससे बातें कर रहे हो, तुम्हें पता है?

बद्दू : माया से···मौत से!

[जाने लगता है, श्यामबिहारी उसे रोक लेते हैं।]

श्यामबिहारी : क्या कहा, मैं मौत हूँ?

बद्दू : जो हर क्षण मौत के ही लिए जी रहा है, जो इस जीवन को माया मान कर चलता है, वह क्या है?

श्यामबिहारी : तुझे क्या पता ! मृत्यु से मुझे तनिक भी डर नहीं ! वह मेरा क्या कर लेगी ? वह केवल मेरे शरीर को ले सकती है, मुझे नहीं ! जानता है, मैं अमर हूँ ! देख मेरा यह घर ! मेरा बनवाया हुआ वह धर्मशाला ! मेरी कीर्ति ! मेरे दो पुत्र, मेरा नाती, और उसकी अनन्त पीढ़ियाँ !

बद्दू : जिसे निश्चय ही लोग भूल जायँगे !

श्यामबिहारी : कभी नहीं, श्यामबिहारी दास का नाम सदा रहेगा। इस घर में जितनी ईंटें लगी हैं न ! सब में मेरा नाम ढला हुआ है। मेरे असंख्य नाम !

[बद्दू सहसा हँस पड़ता है ।]

श्यामबिहारी : क्यों हँसता है इस तरह ?

बद्दू : (*गाता हुआ*)

हरना !
किसी से न डरना,
किसी से न डरना !
समुझि-समुझि वन चरना
हरना !
किसी से न डरना,
किसी से न डरना !

श्यामबिहारी : चुप रह, बड़ा गानेवाला आया है। तो मुझमें डर

क्या ? मुझे देख···समीप से देख मेरी आँखों में ! डर नहीं, है तेरी हिम्मत मेरी आँखों में देखने की ?

बद्दू : आपकी आँखों में भय है चाचाजी ! डर समाया हुआ है।

श्यामबिहारी : झूठ बोलता है तू ! वह भय तेरी आँखों का है, जिसकी छाया इन आँखों में पड़ रही है। फिर से देख निर्भय होकर !

बद्दू : आपकी आँखों में एक काली छाया है—बहुत गहरी छाया।

श्यामबिहारी : और उसमें ?

बद्दू : एक घायल मछली तड़प रही है !

श्यामबिहारी : पागल कहीं का ! हिंसक·····इसे मेरी आँख में घायल मछली दिख रही है ! डरपोक कहीं का !

[श्यामबिहारी आवेश में है, बद्दू उतना ही तेज मुँह का बाजा बजाता हुआ चला जाता है। भीतर से दौड़े हुए रामचन्दर का प्रवेश ।]

श्यामबिहारी : बद्दू को अपने घर में बहुत आने-जाने मत देना—यह ठीक नहीं है। झूठा, डरपोक कहीं का, उसे मेरी आँखों में काली छाया दीख पड़ती है !

रामचन्दर : पिताजी, आप इतना परेशान मत होइये !

श्यामबिहारी : कौन परेशान है ? मैं कभी परेशान नहीं होता ! मैं वसूल और नियम का आदमी हूँ। हर वस्तु का हिसाब है मेरे पास। हर बात की योजना है, मेरे दिमाग में ! मजाल क्या कि कोई चीज असत्य हो जाय !

रामचन्दर : तो यहाँ फोटो के लिए सिर्फ तीन कुर्सियाँ लगेंगी !

श्यामबिहारी : जब बहू नहीं है, मुन्ना भी नहीं है—फिर परिवार का फोटो कैसा ? (रुककर) एक कमलनयन था, एक गोपाल है, और एक तुम हो, तुम दोनों···।

[सहसा कहीं से बद्दू की आवाज आती है ।]

आवाज : ये दोनों स्वार्थी हैं चाचाजी !

श्यामबिहारी : बद्दू !

रामचन्दर : वह देखिये पेड़ पर चढ़ा है !

श्यामबिहारी : (*गुस्से में*) बद्दू, चल इधर ! चलता है कि नहीं ! मेरा वश चलता तो कमलनयन की तरह तुझे भी घर से निकाल कर दम लेता !

[बद्दू आता है, श्यामबिहारी उसे एक छड़ी मारते हैं ।]

बद्दू : बस चाचाजी, जाऊँ अब ! नमस्ते ।

[पुकारते हो लौटता है]

श्यामबिहारी : सुनो, तुम अच्छे बनो। आदमी को यहाँ चन्द दिन रहना है।

बद्दू : मेरी चिन्ता मत कीजिए चाचाजी, मैं यहाँ बहुत दिनों तक रहूँगा। यह मेरी जिन्दगी है, इसका पूरा मालिक मैं हूँ।

[जाने लगता है]

श्यामबिहारी : बद्दू, सुनो !

बद्दू : मेरा क्या, मैं फिर सुने लेता हूँ।

श्यामबिहारी : मैं तेरा चाचा हूँ बद्दू ! मुझे आज से तीसवें दिन मर जाना है। पता है न ?

बद्दू : नहीं, मुझे नहीं पता। (*रामचन्दर की ओर संकेत कर*) इनको पता होगा !

रामचन्दर : चुप रहो !

श्यामबिहारी : सभ्यता सीखो !

बद्दू : (*रामचन्दर से*) आप से कहा जा रहा है।

श्यामबिहारी : मेरे इष्टफल में यह स्पष्ट है कि मेरे वंश को अमरता मिलेगी। तुझे विश्वास नहीं है ! कर्म पुरुष को जानना चाहिए कि भूत, वर्तमान और भविष्य क्या है ?

[बद्दू धीरे से गायब हो जाता है ।]

और तू है कि इसके विरुद्ध बातें करता है। अरे, कहाँ गया तू ? भाग गया। अज्ञानी कहीं का ! (रुककर) सुनो, इष्टफल ने बताया है कि, पिछले जन्म में मैं मछली था·····नहीं, राजा था। राजा के रूप में मैंने अहंकार-वश एक अपराध किया था—अपनी रानी को मैंने जिन्दा ही दीवार में चुनवा दिया था। तभी इस जीवन में एडवोकेट के रूप में अपराधियों को मुक्ति दिलाने के लिए मुझे वकालत करनी पड़ी। चोर-डाकू, हत्यारे और कमलनयन जैसे आत्महन्ताओं के बचाने में ही मेरा जीवन लगा। यह सब मेरे पूर्व जीवन के ही कारण हुआ।

[उसी समय बाहर से फोटोग्राफर के संग हरेराम का प्रवेश, रामचन्दर भीतर से कुर्सी लेने दौड़ते हैं।
फोटूबाबू की अवस्था चालीस से ऊपर है। दुबले-पतले, रूखे बाल, आँखों पर पुराना चश्मा—खाकी नेकर, लम्बा मोजा। कालरदार कोट, गले में काली टाई।]

फोटूबाबू : नमस्ते साहब! कुछ देरी हो गयी, माफ कीजियेगा।

श्यामबिहारी : खैर, जल्दी कीजिये।

[फोटूबाबू अपना सामान ठीक करते हैं, भीतर से हाथ में दो कुर्सियाँ लिये रामचन्दर का प्रवेश।]

श्यामबिहारी : तुम अकेले कुर्सी ढो रहे हो? गोपाल कहाँ है? बुलाओ उसे!

हरेराम : मैं बुलाता हूँ।

[रामचन्दर दोनों कुर्सियाँ ठीक से रखते हैं, भीतर से हरेराम के साथ गोपाल का प्रवेश।]

श्यामबिहारी : हूँ, भीतर बैठे हुए थे! जाओ, जल्दी से अपने लिए एक कुर्सी लाओ।

हरेराम : मैं ला दूँ!

श्यामबिहारी : नहीं, यहीं लायेंगे।

[गोपाल कुर्सी लेने जाते हैं।]

श्यामबिहारी : मेरे सामने मेरे नियमों का विरोध कोई नहीं कर सकता।

[गोपाल कुर्सी लेकर आते हैं, और उसी तरतीब में कुर्सी लगा दी जाती है। अब तक फोटूबाबू ने अपना केमरा खड़ा कर लिया है।]

रामचन्दर : देख लीजिये, कुर्सियाँ ठीक हैं न!

फोटूबाबू : जी हाँ, सब ठीक है।

श्यामबिहारी : तो हम लोग बैठें! बैठो!

[श्यामबिहारी बीच में। दायें-बायें, क्रमशः रामचन्दर और गोपाल, हरेराम पीछे खड़े हो जाते हैं। फोटूबाबू बार-बार काले कपड़े के भीतर झाँक-झाँक कर देखते हैं।]

गोपाल : (*खिन्न*) जरा जल्दी कीजिए, नहीं तो रोशनी चली जायेगी।

फोटूबाबू : अजी साहब, आप फिकर मत कीजिये। 'लाइट' तो मेरे कब्जे में है। (*'लेन्स' छूते हुए*) इसमें है लाइट, खाकसार की इन उँगलियों में है लाइट!

हरेराम : अजी, विलम्ब हो रहा है श्रीमान् जी!

फोटूबाबू : हुजूर, आपको लाख-लाख शुक्रिया कि आप इस तरह अपनी फोटू खिचवाने पर राजी तो हुए। घर वालों की और मेरी बड़ी किस्मत थी, सच!

श्यामबिहारी : हाँ, सोचा फोटो करा ही लूँ। घर में टँगा रहेगा, एक फोटो मेरी धर्मशाले में टाँगने के लिए रहेगी। आदमी कहीं गायब थोड़े ही होता है, वह सदा अपने कर्मों में जीवित रहता है।

फोटूबाबू : सही फर्माते हैं आप हुजूर! सच कहता हूँ, आपको देख कर मेरा दिल भर आता है—'क्या भरोसा है जिन्दगानी का, आदमी बुलबुला है पानी का।'

रामचन्दर : जल्दी कीजिये!

गोपाल : अजी साहब ! फोटो खींचने के बाद आप खूब बातें कर लीजियेगा।

श्यामबिहारी : जब मैं यहाँ अभी बैठा हूँ, तब आप लोगों के बोलने की क्या जरूरत? (*रुककर*) सब मोह है, यह मैं जानता हूँ, पर इन लोगों की दशा देखकर मुझसे चुप नहीं रहा जाता! (*भाव बदल कर*) अजीब है इस जीवन का रहस्य! हम जैसे मरने के लिए ही जन्म लेते हैं!

हरेराम : मृत्यु ही जीवन है!

श्यामबिहारी : चुप रहो! दूसरों से सुनी-सुनायी, रटी हुई बातें बोलने की आदत पड़ गयी है? मैं पूछता हूँ, तुमने मृत्यु का मुँह देखा है? उसका निर्मम-भयानक चेहरा! जलती हुई आँखें!

[हरेराम सभय सिर हिलाते हैं।]

श्यामबिहारी : फिर ऐसी बातें मत किया करो! डर के मारे लोग मौत का गुण गाते रहते हैं—'मृत्यु ही जीवन है'!

[सहसा पृष्ठभूमि से कोई पुकारता है—'एडवोकेट साहब, बाबू श्यामबिहारी दास'।]

श्यामबिहारी : (*सहसा डर से उठते हुए*) कौन? ज्योतिषी महाराज!

[आवाज की ओर बाहर बढ़ते हैं।]

रामचन्दर : (*दौड़ते हुए*) रुकिए, मैं देखता हूँ कौन है!

[बाहर निकल जाते हैं।]

श्यामबिहारी : (*त्रस्त*) मैंने देखा है, वह कौन है!

रामचन्दर : (*लौटकर*) कोई तो नहीं है!

हरेराम : फिर किसकी आवाज थी?

श्यामबिहारी : उसी ज्योतिषी की! मैंने उसे देखा है।

गोपाल : (*इधर-उधर देखकर*) पर कहाँ गायब हो गये?

श्यामबिहारी : मेरा जैसे कोई पीछा कर रहा है। (*भाव त्रस्त हो*) कौन है तू?

[तेजी से बाहर दौड़ते हैं, पीछे-पीछे दोनों लड़के जाते हैं। पृष्ठभूमि से एडवोकेट साहब की आवाज सुनायी देती है।]

आवाज : कौन है तू? कहाँ गया? भागता क्यों है?

[मंच पर फोटूबाबू और हरेराम डरे हुए खड़े हैं।]

फोटूबाबू : यह क्या मामला है?

हरेराम : हे ईश्वर! शान्ति दे!

[बाहर से एडवोकेट साहब का प्रवेश, पीछे-पीछे दोनों लड़के]

श्यामबिहारी : मैं उससे नहीं डरता! मुझे क्या डर?

फोटूबाबू : हुजूर क्या था वह?

श्यामबिहारी : गोपाल, कारीगर आया है न, उससे कहो वह इन्तजार करे! संगमरमर की प्लेट अभी इस फोटो के बाद ही दरवाजे पर जड़ी जायगी।

[गोपाल अन्दर जाते हैं।]

हरराम : तो कारीगर था वह!

रामचन्दर : हाँ, उसी की आवाज थी!

श्यामबिहारी : हूँ ! ···चलिये झटपट फोटो खींचिये। जल्दी चलो गोपाल ! कहाँ रह जाते हो तुम लोग ?

[गोपाल का प्रवेश]

श्यामबिहारी : चलो बैठो !

[सब लोग पूर्ववत् अपनी-अपनी कुर्सी पर बैठते हैं ।]

हरेराम : अहा हा ! आज जो कहीं रामचन्दर बाबू की माताजी जीवित होतीं !

[गोपाल रामचन्दर, हरेराम को कड़ी नजर से देखते हैं ।]

श्यामबिहारी : ज्योतिषी ने मेरे इष्टफल में बताया था, कि मेरी पत्नी की मृत्यु ठीक बयालिस साल की अवस्था में जल-वृष्टि के समय होगी। पास में केवल मैं रहूँगा। शेष परिवार कहीं उत्सव में गया होगा। वही हुआ—एक-एक बात सही।

फोटूबाबू : अच्छा, आप लोग बिल्कुल तैयार हो जाइये (*कैमरा ठीक करते हुए*) अच्छा, आप सब सामने देखिये !

[फोटूबाबू जैसे ही फोटो खींचने के पहले 'रेडी' कहते हैं, पृष्ठभूमि से मोटी आवाज आती है ।]

आवाज : ओ नादान ! एक कुर्सी पर स्वर्गीय माताजी का चित्र रखो !

[सब चकित होते हैं ।]

गोपाल : यह आवाज किसकी है ?

रामचन्दर : कहाँ से आयी ?

श्यामबिहारी : यह वह आवाज नहीं है, जो हर वक्त मेरा पीछा करती है।

हरेराम : यह आकाशवाणी है सरकार ! माताजी का चित्र यहाँ अवश्य ही रखा जाय !

गोपाल : इसी को आप लोग आकाशवाणी मानते हैं ? अजीब है·····

श्यामबिहारी : रामचन्दर ! दौड़कर अपनी माँ का चित्र लाओ। जाओ, मेरी आज्ञा है ! जो नियति चाहती है उसे···।

[रामचन्दर भीतर दौड़ते हैं ।]

और हाँ, गोपाल तुम झट से एक कुर्सी और लाओ !

[गोपाल कुर्सी लाने दौड़ते हैं ।]

फोटूबाबू : ओ हो, सब फिर से देखना होगा !

[फोटूबाबू अपना केमरा ठीक करते हैं, दायीं ओर गोपाल कुर्सी रखते हैं, और रामचन्दर उसी पर माँ का चित्र रखते हैं ।]

फोटूबाबू : अब आप लोग ठीक से बैठ जाइये !

गोपाल : मैं उस आकाशवाणी वाले को देखना चाहता हूँ।

फोटूबाबू : पंडितजी, आप हिल रहे हैं ! शान्त खड़े रहिये !

श्यामबिहारी : देखिये, आप लोग साहस से काम लीजिए ! मेरी मृत्यु की कल्पना कर आप लोग डरते क्यों हैं ? यह सत्य है कि साँस की डोर में बाँधे हुए मृत्यु हर क्षण हमें अपनी ओर खींच रही है। पर हमारे जीवन-साहस का बल कम नहीं है ! हम कागज के टुकड़े नहीं हैं कि मौत हमें एक झोंके में उड़ा ले जाय। हम इन्सान ही नहीं, जीवन दर्शन भी हैं।

फोटूबाबू : हुजूर अब मैं खींचने जा ही रहा हूँ। 'रेडी' 'स्टडी' ! सामने देखिए !

[सब लोग उसी भाँति देख रहे हैं, सहसा श्यामबिहारी उठ खड़े होते हैं, जैसे उनका दम घुट रहा हो]

श्यामबिहारी : यह क्या है ? यह क्या है मेरे सामने ?

[सब लोग घबड़ा गये हैं ।]

श्यामबिहारी : (*अपनी कुर्सी पर जैसे टूटकर बैठते हुए*) मैंने अपनी आँखों में एक जलती हुई आँख देखी है—केवल आँख। वह जलती हुई आँख धीरे-धीरे बुझकर स्याह हो गयी। फिर वह मेरे सामने आ खड़ी हुई और हाथ फैलाये मेरी आँखों की रोशनी माँगने लगी !

फोटूबाबू : हुजूर, फोटो कल हो जायगी, आप आज आराम कीजिये !

श्यामबिहारी : नहीं नहीं ! डर गये ? घबड़ाओ नहीं। सब कार्य का समय निश्चित है—चलिये फोटो खींचिये।

[श्यामबिहारी बड़े ही साहसपूर्ण ढंग से सामने देखते हुए बैठते हैं। सब शान्त हैं। फोटो खिच जाती है। पृष्ठभूमि से उसी क्षण ताली बजने की आवाज। सब लोग पुनः आश्चर्य-चकित हैं।]

सब लोग : किसने यह ताली बजायी ?

रामचन्दर : ताली बजने की आवाज इधर से आयी है।

गोपाल : मैं देखता हूँ, वह क्या है !

[मुड़ने लगते हैं ।]

रामचन्दर : (*सहसा*) वह देखिये वह, कोई पेड़ पर बैठा हुआ है ! देखिये वह छिप रहा है !

हरेराम : बद्दू है बद्दू।

श्यामबिहारी : पकड़ो उसे !

[रामचन्दर तेजी से बाहर जाते हैं ।]

हरेराम : अरे, वह बदमाशों का सरदार है सरदार ! यह देखिए न, यहाँ यह मेढक मार कर छोड़ गया है। उमर क्या है, पर करनी और स्वभाव देखिये ···छीः !

[बाहर से रामचन्दर बद्दू को पकड़े हुए आते हैं ।]

बद्दू : अजी छोड़िये, मुझे पकड़ते क्यों हैं ? मैं कोई चोर-डाकू हूँ क्या ? आइये न, मैं तो खुद चल रहा हूँ। ····नमस्ते चाचाजी, कहिये, क्या आज्ञा है ?

श्यामबिहारी : पेड़ पर बैठे थे ? उससे अच्छी और कोई जगह नहीं थी ?

बद्दू : चाचाजी, बात यह है कि वह आकाशवाणी वाला आया था। मुझसे बोला, 'मुझे पेड़ पर चढ़ा दो ! वहाँ से बोलने में अच्छा रहेगा।' बहुत बड़ी-बड़ी आँखें थीं उसकी—अंगारे की तरह जलती हुई ! इतनी बड़ी जीभ, लम्बी-लम्बी उँगुलियाँ !

श्यामबिहारी : चुप रहो ! मेरे साथ मजाक करता है ? इतनी हिम्मत तेरी !

फोटूबाबू : (*सहसा*) अरे···रे···रे, यह मेढक अभी जिन्दा है!

हरेराम : नहीं जी, मर चुका है—देखिये न!

बद्दू : अजी, लड़ते क्यों हैं? समझिये यह बेचारा जिन्दा ही मरा हुआ है।

श्यामबिहारी : क्या कहा? जिन्दा ही मरा हुआ है? इस तरह बोलता है तू? तू मरने से नहीं डरता क्या?

रामचन्दर : बद्दू! तुम जाओ यहाँ से!

गोपाल : बद्दू, मेरे सँग आओ!

बद्दू : अजी, मेरा सँग कौन देता है! (*चित्र देखकर*) क्यों चाचाजी?

[बद्दू तागे से पुनः उसी मेढक को मंच पर नचाता हुआ तेजी से घूमता है। फोटूबाबू सभय अपना सामान लिये बाहर निकल जाते हैं।]

श्यामबिहारी : मैं तुझसे कुछ पूछ रहा हूँ? सुनता है कि नहीं?

बद्दू : सुन रहा हूँ चाचाजी। क्या कहा···मौत! मौत क्या होती है?

श्यामबिहारी : मौत! जो हर क्षण हम सब को मारती चल रही है!

बद्दू : (*हँसता है*) नहीं, नहीं चाचाजी! मौत इसी मेढक का नाम है! (*हरेराम को देखकर*) यह खड़ा है!

हरेराम : भाग जा यहाँ से!

श्यामबिहारी : नहीं, तू असत्य कहता है। सुन, आत्मा अमर है, यह संसार माया है!

बद्दू : (*हँसता है*) माया है? संसार माया है? जो आपको मार रहा है, वह माया है?

[बहुत तेज हँसता है।]

श्यामबिहारी : चुप रह! तू हँसता क्यों है? तू इतनी जोर से क्यों हँसता है? तू मुझसे ज्यादा जानता है क्या? तू अपने शरीर को अमर समझ कर हँसता है? तुझे मेरे लिए जरा भी दुख नहीं? मैं कुछ दिनों ही तेरे सँग हूँ! तू पछतायेगा, जिस दिन मैं इस खान्दान में नहीं रहूँगा! तू मेरी याद में रोयेगा!

[बद्दू पुनः हँसता है।]

श्यामबिहारी : तू फिर हँसता है? (*सामने आकर*) तू मुझे हँसा तो जानूँ! हँसा! अब भागता क्यों है? पीछे क्यों हटता है?

[बद्दू पीछे घूमकर मेढक को नचाता हुआ सबको डराता है।]

गोपाल : बद्दू! बन्द कर यह खिलवाड़!

रामचन्दर : यह इस तरह नहीं मानेगा!

हरेराम : पागल हो गया है पागल!

श्यामबिहारी : बन्द कर हँसी अपनी!

बद्दू : इस मेढक से आप लोग डरते हैं? हद हो गयी! अरे यह नकली मेढक है, रबर का!
(*उठाकर दिखाता है*) इसी से डर गये (*उसे दबाकर बजाता है*) माया है! माया!·····।

[हँसता है और बहुत तेजी से मेढक को नचाता हुआ बाहर निकल जाता है।]

किम् किम् किम् किम्
कें कें कें कें !

श्यामबिहारी : (बढ़कर) भागता क्यों है ?

[पर्दा]

दूसरा अंक

[वही स्थान]

[एक ओर व्यासगद्दी पर आसन लगाये हुए हरेराम बैठे हैं। दूसरी ओर नीचे गीता और रामायण का स्तवन और पाठ करते हुए दो पूजक बैठे हैं। बीचो बीच चौकोर आसन, पुष्पादि से सँवारा हुआ। सामने चौक पुरा है। कई मंगल घट रखे हैं। दीवार में घड़ी लगी है, जिसमें रात के आठ बज रहे हैं।

एक दीपक व्यास गद्दी के समीप है, एक दोनों पूजकों के पास, और एक मंगल घट के ऊपर।

पर्दा खुलने पर : हरेराम आँख मूँदे, जैसे ध्यानावस्थित बैठे हैं सामने श्रीमद्भागवत की पोथी खुली है। पूजक क्रमशः पाठ कर रहे हैं।]

पहला : जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्माद् परिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

दूसरा : बंदउं अवध भुआल, सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीन दयाल, प्रिय तन तृण इव परिहरेउ ॥

पहला : अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्त मध्यानि भारत ॥

[जम्हाई आ जाती है।]

अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिवेदना ॥

[दूसरा पूजक भी जम्हाई लेकर पढ़ता है ।]

दूसरा : प्रविसि नगर कीजे सब काजा, हृदय राखि कोशलपुर राजा।
उघरे अंत न होइ निबाहू, कालनेमि जिमि रावण राहू।

[बाहर से सहसा रामचन्दर का प्रवेश। हरेराम हड़बड़ा कर आँख खोलते हैं। जैसे उनका ध्यान भंग हो गया।]

रामचन्दर : पंडितजी, आप सो रहे थे क्या ?

हरेराम : नहीं नहीं ! मैं कुछ ध्यान कर रहा था।

रामचन्दर : और पिताजी कहाँ हैं ?

हरेराम : अरे ! बहुत विलम्ब हुआ, वह तो यहाँ अपने आसन से उठकर भीतर चले गये हैं। अब आप ही बताइये, मैं यह श्रीमद्भागवत किसको सुनाऊँ ! थोड़ा-सा ही अध्याय शेष रह गया है, उन्हें चाहिए कि अपने अन्त समय में बड़े धैर्य और संयम के साथ इसका श्रवण कर लेते।

[रामचन्दर भीतर जाते हुए।]

रामचन्दर : मैं देखता हूँ अभी !

[प्रस्थान]

हरेराम : (पूजकों से) तुम लोग पूरे मन से अपने पाठ करते रहो। कल ग्यारह बजे रात तक सारा पाठ समाप्त कर लेना है।

[भीतर से फूफाजी का प्रवेश।]

फूफा : पंडितजी, इन पूजकों से कह दीजिये कि ये लोग चलकर

भोजन कर लें। साहब की आज्ञा है कि सब लोग उनके सामने खा-पी लें।

हरेराम : अच्छा ! जाओ तुम लोग भोजन कर आओ ! सावधान, संयम से भोजन करना, रात भर नाम-जप और पाठ करना है।

[दोनों पूजक अन्दर जाते हैं।]

हरेराम : एडवोकेट साहब कहाँ हैं ?

फूफा : पहले तो हम सब सम्बन्धियों और रिश्तेदारों से गले मिलते रहे हैं। फिर सहसा रोने लगे।

हरेराम : ओ हो हो ! आश्चर्य है ! इतने संयमी, गम्भीर कर्म-पुरुष, साहसी को भी अन्ततः मृत्यु से उत्पन्न माया-मोह ने ग्रस लिया। पर यहाँ अपने आसन पर तो बहुत गम्भीर और शान्त मुद्रा में बैठते रहे हैं।

फूफा : यहाँ से भीतर इसीलिए तो बार-बार उठकर जाते रहे हैं।

हरेराम : इस समय क्या कर रहे हैं ?

फूफा : आराम कर रहे हैं !

हरेराम : अच्छा है, थोड़ा विश्राम कर लें ! पिछले कई दिनों से उन्हें नींद नहीं आई है।

[भीतर से हाथ में कागज लिये रामचन्दर का प्रवेश।]

रामचन्दर : पंडितजी, मेरा विचार है कि आप श्रीमद्भागवत का पाठ रोकिये नहीं। उनके यहाँ बैठने और न बैठने से

कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता! उनकी मानसिक स्थिति अब ठीक नहीं है।

हरेराम : सत्य कहते हैं आप!

[हरेराम अपने मन में पाठ करते हैं।]

रामचन्दर : (फूफा से) आइये, तब तक हम लोग यहाँ सामग्री का मिलान कर लें। आप पढ़ते जाइये, मैं देखता जाऊँ!

[फूफाजी कागज से पढ़ते चलते हैं, रामचन्दर आसन पर रखी सामग्रियों को देखते चलते हैं।]

फूफा : गंगाजल? त्रिवेणी, प्रयाग संगम का जल!

रामचन्दर : यह है।

फूफा : द्वारकाधाम, बद्रीनाथ, सेतुबंध रामेश्वरम् और जगन्नाथ-पुरी—अर्थात् चारों धाम के प्रसाद?

रामचन्दर : हाँ, यह रखा हुआ है। आगे पढ़िये!

फूफा : अयोध्या और काशी के पुष्प-अक्षत्?

रामचन्दर : हाँ है! इसमें तो बहुत था, कैसे खाली हो गया?

हरेराम : आपके पिताजी ने उपयोग कर लिया।

रामचन्दर : ठीक है। आगे देखिये!

फूफा : मथुरा और वृन्दावन की मिट्टी?

रामचन्दर : हाँ, ठीक! यह रखी है।

हरेराम : (बहुत प्रसन्नता से) बड़े भइया, पिताजी के स्वर्गवास के लिए सारी सामग्री एकत्रित है। किसी वस्तु की कमी नहीं है! केवल चिन्ता की बात यही है कि जिस

श्यामबिहारी दास ने पिछले दस वर्षों से अपनी मृत्यु के लिए इतनी तैयारी कर रखी थी, अन्त समय में वही जीवन की माया में फँस गया।

फूफा : करीब चौबीस ही घंटे की और बात है।

रामचन्दर : वही तो कठिन है!

हरेराम : 'कोटि-कोटि मन जतन कराहीं, अन्त समय कछु आवत नाहीं'!

फूफा : सत्य है! सत्य है।

रामचन्दर : (*एक ही साथ*) हाँ, बात तो बिल्कुल सही है।

[भीतर से तेजी में गोपाल का प्रवेश।]

गोपाल : चुप रहिये आप लोग! (*सब शान्त हो देखने लगते हैं*) पिताजी को नींद आ गयी। (*प्रसन्नता से*) आँख मूँदे शान्ति से पड़े हैं।

हरेराम : सच! हे भगवान्, तू धन्य है। इष्टफल में शान्त मृत्यु का ही फल निकला है।

रामचन्दर : चलो, बहुत अच्छा हुआ! चार-छः घंटे अगर सोते रह जाते तो सारे घर में शान्ति हो जाती! नहीं तो पिताजी का दीन मुख देखा नहीं जाता!

गोपाल : (फूफा से) आप अन्दर सावधान रहियेगा, देखियेगा, कोई उनके पास जाये नहीं! भीतर कोई बोले नहीं!

[फूफा अन्दर जाते हैं। गोपाल तेजी से बाहर।]

रामचन्दर : देखा न ! खुद अपने टहलने चल दिये ! इन्हें तो तनिक भी चिन्ता नहीं है पिताजी के स्वर्गवास का !

हरेराम : अरे बड़े भइया, वह मोहनी उनकी प्रतीक्षा कर रही होगी !

रामचन्दर : पिताजी की बड़ी इच्छा थी कि उनके सामने इनकी भी शादी हो जाती ! कितनी अच्छी-अच्छी शादियाँ आयी थीं, पर इनके दिमाग में·····।

हरेराम : (*बीच ही में*) ओ हो, मैं तो पूछना ही भूल गया। सुना है, कुछ धन निकला है,···कितना ?

रामचन्दर : पिछले दिन जब यहाँ गायत्री बहन आयी है, तब पिताजी ने निकाला है—ढाई हजार रुपये थे !

हरेराम : देखिए···देखिए···मैंने कहा था न, इष्टफल की कोई भी बात असत्य नहीं हो सकती ! 'न्यायकर्मरता धन-धान्यम् गोपरक्षिता:'। हाँ, आपको कितना मिला ?

रामचन्दर : गायत्री बहन को पाँच सौ रुपये मिले हैं।

हरेराम : और शेष रुपये ?

रामचन्दर : शेष रुपया रखा रहेगा, पिताजी की मृत्यु के बाद उनकी पुण्यस्मृति में एक मन्दिर बनेगा।

[सहसा भीतर से किसी स्त्री का रुदन सुनायी पड़ता है।]

रामचन्दर : गायत्री ! क्या है ? (*भीतर भागते हुए*) इस तरह क्यों रोती हो ?

हरेराम : (*उठकर दरवाजे की ओर जाते हुए*) क्या हुआ ?

[भीतर से फूफाजी का प्रवेश]

फूफा : स्वप्न में वह बेतरह रो रहे हैं !

हरेराम : तो इसमें इतने घबड़ाने की क्या बात ! भाई, यह सब मृत्यु की माया है।

[भीतर से रामचन्दर का प्रवेश]

रामचन्दर : पंडितजी, आप झट भीतर चलिए। पिताजी को देख लीजिये, क्या बात है !

फूफा : हाँ, आप जाइए मैं तब तक यहाँ देख रहा हूँ।

हरेराम : (*भीतर जाते हुए*) अच्छी बात है, आइये !

[रामचन्दर के साथ भीतर जाते हैं। भीतर से दोनों पूजक आते हैं।]

हरेराम : (*दरवाजे से*) चलो, झट आसन ग्रहण कर अपना पाठ प्रारम्भ करो !

[दोनों पूजक अपने स्थान पर बैठते हैं।]

फूफा : आप लोग यहाँ देखिये, मैं भीतर देख लूँ अब क्या दशा है !

[फूफाजी भी अन्दर जाते हैं। दोनों पूजक अपना-अपना पाठ प्रारम्भ करने को होते हैं, तभी बाहर से दौड़ा हुआ बद्दू आता है।]

बद्दू : (*प्रवेश करते ही रुककर*) हे लड़के ! सुनो ! मेरी बात सुनो।

पहला : क्या है ?

बद्दू : तुम्हारे पंडितजी कहाँ गये ?

दूसरा : भीतर गये हैं !

बद्दू : भीतर गये हैं ! अच्छा तुम लोग बाहर जाओ ! जाओ !

पहला : नहीं जायेंगे !

दूसरा : क्यों जायँ ! तुम्हारे कहने से अपना काम छोड़ दें !

पहला : पाँच रुपये रोज पर आये हैं !

बद्दू : सीधे जाते हो कि नहीं ?

दोनों : (*एक साथ*) नहीं जायेंगे ! भगाने वाले आप कौन होते हैं ?

बद्दू : मैं कौन होता हूँ, अच्छा !

[बद्दू वापस चला जाता है। दोनों पूजक प्रसन्नवदन हँसने लगते हैं।]

पहला : मैंने भगा दिया।

दूसरा : मैंने डाँट दिया। मुझे क्या डर ! मुझे हनुमानजी का सहज आशीर्वाद प्राप्त है !

[दोनों हँसते हैं। उसी समय बाहर—दायीं ओर से, कोई भूत का रूप शरीर धारण करके प्रविष्ट होता है। और अजीब भयावह ढंग से खिलखिलाकर हँसता है। दोनों पूजक बेतरह डरकर चीख पड़ते हैं।]

आकृति : भाग जाओ ! भाग जाओ !!

[पहला पूजक भीतर भागता है। दूसरा पूजक गिड़गिड़ाता हुआ वहीं घुटने टेककर हनुमान चालीसा का पाठ करने लगता है।]

जै हनुमान ज्ञान गुनसागर,
जै कपीस तिहुँ लोक उजागर।
रामदूत अतुलित बलधामा,
अंजनि पुत्र पवनसुत नामा।

आकृति : (*क्रोध से*) बन्द करो ! भाग जाओ !

पूजक : (*पूर्णतः घबड़ाकर*) महावीर विक्रम बजरंगा ! (*भयाकुल*) महावीर ! ···महावीर ! महावीर ! ·····

आकृति : भाग जाओ ! भाग जाओ !!

पूजक : अच्छी बात है महराज ! हम लोग अभी भाग जायेंगे ! आप अपने धाम जाइये ! हे कृपानिधान ! अपने धाम जाइये !

[हँसती हुई आकृति धीरे-धीरे अदृश्य हो जाती है।]

पूजक : (*हाथ जोड़े हुए टूटते स्वरों में*)
लाल देह लाली लसै, अरुधर लाल लंगूर।
वज्र देह दानव दलन, जै जै जै कपिसूर।।

[अदृश्य होते ही, भीतर से पहले पूजक के साथ हरेराम सभय झाँकते हैं।]

पहला पूजक : भाग गया !

दूसरा पूजक : (*जिसकी अब बोलती बन्द है, सहसा*) भूत ! भूत !!

[चीखकर सहसा बेहोश हो जाता है। हरेराम सँभालते हैं।]

हरेराम : पानी लाओ पानी ! (*पानी पिलाते हुए*) लो पानी पी लो ! आँखें खोलो ! निर्भय हो जाओ !

[भीतर से रामचन्दर और फूफाजी दौड़े आते हैं ।]

रामचन्दर : क्या हो गया ?

फूफा : हाय ! क्या हो गया इसे ?

हरेराम : कोई भूत यहाँ आया था !

रामचन्दर : अजीब बात है ! यह कभी नहीं हो सकता !

फूफा : अजी, लड़के हैं, यों ही डर गये होंगे !

पहला पूजक : हाँ हाँ क्यों नहीं ! आप लोग तो ऐसा कहेंगे ही !

हरेराम : ये ब्रह्मचारी कभी झूठ नहीं बोल सकते !

[पूजक के मुख पर पानी के छींटे दिये जाते हैं ।]

फूफा : इतने पूजन पाठ और धर्म-सामग्री के बीच यहाँ भूत-प्रेत कैसे आ सकता है ?

[पूजक होश में आने लगता है ।]

हरेराम : हाँ हाँ, उठो ! अब डरने की कोई बात नहीं है !

[पृष्ठभूमि से बद्दू की आवाज आती है ।]

आवाज : जा···जा···चला जा यहाँ से ! जा नहीं तो इतना मारूँगा कि·····।

[प्रकट होता है ।]

बद्दू : (*प्रसन्नवदन*) भाग गया ! भाग गया ! अब तक वहीं अंधकार में खड़ा हुआ था !

[सब लोग आश्चर्य-चकित बद्दू को देख रहे हैं ।]

बद्दू : अजी ! यहाँ वह आया था क्या ?

रामचन्दर : कौन ? किसकी बात तुम कर रहे हो ?

बद्दू : उसी की····उसी की ! जमराज का दूत था। मैंने कहा, भाग जा नहीं तो···। (*प्रसन्नता से*) भाग गया फिर !

रामचन्दर : बद्दू !

बद्दू : सच भाई साहब, आया था ! अरे मैंने उसे साक्षात् देखा कि···सच भाई साहब, मेरी उससे बातें हुई हैं !

हरेराम : क्या बातें हुई हैं रे दुष्ट ?

बद्दू : उसने कहा कि इन पूजकों को यहाँ से हटा दो ! यह सारा बकवास अभी बन्द कर दो ! मैंने कहा, अच्छा राजाभइया, तू अपने रास्ते जा, मैं बन्द करा दूँगा।

हरेराम : तो, तुम यह सब बन्द कराने आये हो ?

रामचन्दर : क्यों ?

बद्दू : जो अभी यहाँ आया था, उसी की इच्छा है, वह जाने आप लोग जानें !

दूसरा पूजक : मुझे आज्ञा दीजिये ! मैं जा रहा हूँ।

पहला पूजक : बन्द कर दीजिये न महाराज !

हरेराम : चुप रहो ! शान्ति से बैठकर अपना काम करो ! चलो बैठो···चलो !

[दोनों पूजक यथास्थान बैठते हैं ।]

बद्दू : भइया, फिर मैं कह देता हूँ उससे। (*घूमकर*) सुनो

राजाभइया, जमराज के दूत ! तुम जानो, यह लोग नहीं मान रहे हैं !

रामचन्दर : बद्दू, तुम्हें कुछ खबर भी है ?

हरेराम : तुम्हारे चाचाजी अब अपनी अन्तिम दशा में हैं। जाकर भीतर देखो उन्हें !

बद्दू : अजी, मैं क्या देखूँ ! मैं तो चाचाजी की यह तस्वीर देख रहा हूँ। (*चित्र देखता हुआ*) आ हा हा ! धन्य हो चाचाजी ! आप जैसा चालाक-होशियार और कोई नहीं होगा ! खूब मौत का तमाशा बनाया।

हरेराम : इसका माथा खराब है।

रामचन्दर : पंडित जी, आप अपने आसन पर बैठकर कार्य प्रारम्भ कीजिये।

बद्दू : हाँ मजदूरी मिलेगी, ऊपर से इनाम भी मिलेगा !

रामचन्दर : बद्दू ! पिताजी की हालत बहुत खराब है।

बद्दू : हाँ···हाँ कल रात के ठीक ग्यारह बजे मर जायेंगे, यही न ? बोलिये--उदास क्यों हो गये ? हँसिये खुशियाँ मनाइये ! भारतवर्ष में तो मृत्यु बहुत उत्तम चीज मानी गयी है। चाचीजी की मृत्यु पर देखिये कितने बाजे बजे थे। पैसे लुटाये गये थे। घर से श्मशान तक जैसे धूमधाम से कोई बारात गयी हो। (*रुककर*) पर शायद, यह मृत्यु नहीं है क्यों ? यह कुछ और ही है।

[भीतर से पुनः किसी स्त्री के रुदन की आवाज आती है, रामचन्दर भीतर जाते हैं।]

हरेराम : देख रहे हो, इस घर की हालत कितनी खराब है ?

बद्दू : हालत खराब तो सिर्फ एक की है, पूरे घर की क्यों ? लड़कों को आधा-आधा घर मिल गया। सम्पत्ति मिल गयी। और आपके ठाट की बात ही क्या है ! अहा हा, क्या ठाट हैं आपके ! आप और यह व्यासगद्दी ! क्या मजे हैं सबके ! अब केवल चाचाजी मर जायें, सबका अहोभाग्य !

हरेराम : (*पूजकों से*) तुम लोग जोर से पाठ करो न !

दूसरा पूजक : (*पाठ करते हुए*) सत्य बचन कहु निशिचर नाहा···।

बद्दू : (*सहसा*) मिला आज भोजन मनचाहा ।

हरेराम : चुप रहो !

बद्दू : तुम लोगों से कहा जा रहा है ! भाग जाओ नहीं तो मैं फिर उसी को बुलाता हूँ ! बुलाऊँ ?

दोनों पूजक : नहीं नहीं, हम चले जायेंगे !

बद्दू : अच्छा देखता हूँ अभी।

[तेजी से बाहर चला जाता है।]

हरेराम : डरो नहीं ! भूत-प्रेत सब झूठे हैं !

बद्दू : (*तेजी से प्रविष्ट हो*) शाबाश ! फिर तो यह मौत भी झूठी है।

हरेराम : कभी नहीं ! मृत्यु सच है !

बद्दू : क्योंकि तुमने उसे सच मान लिया है। क्योंकि जन्म से हम, लोगों को मरते हुए देखते आ रहे हैं। मौत तुम्हारे लिए भूत है, प्रेत है। इसे हमने कभी नहीं सोचा, इसे अंगीकार कर लिया।

[हँसता हुआ बाहर चला जाता है। सहसा भीतर से लोगों की बोलचाल उभरती है, और भीतर से एडवोकेट साहब का प्रवेश—दाढ़ी-मोंछ बढ़ी हुई, वस्त्र अस्तव्यस्त। वह लड़खड़ा कर कहीं गिर न जायँ, इसलिए रामचन्दर और फूफाजी उन्हें सम्हाले हुए हैं।]

श्यामबिहारी : (*भावावेश में, जैसे उन में कुछ बेतरह मथ रहा है*) में···· में···में !

हरेराम : आइये, अपने आसन पर बैठिये।

श्यामबिहारी : यहाँ अभी कौन आया था ?

हरेराम : वही बद्दू था।

श्यामबिहारी : (*छुड़ाते हुए*) तुम लोग मुझे छोड़ दो ! कौन हो तुम लोग ?

[सब का मुँह देखते हैं।]

श्यामबिहारी : तुमने मृत्यु देखी है ? तुमने देखी है ? तुमने ? और तुमने ? मैंने देखी है। मैं मर गया था (*संकेत करके*) ये सब मेरी पीली-ठंडी लाश के चारों ओर खड़े थे। पर कोई नहीं रो रहा था। मुझे लोग मिट्टी कह रहे थे। गंदे-फटे कपड़ों में, सूखे बाँस की अर्थी पर मैं बहुत जकड़ कर बाँध दिया गया था। किसी ने मुझे कंधा

नहीं दिया। सबको बहुत जल्दी थी, मुझे एक काली मोटर की छत पर बाँधकर लोग श्मशान ले गये। बहुत छोटी-सी चिता बनाकर, केवल डेढ़ मन गीली लकड़ी में मुझे फूँक दिया। उधर मैं जलने लगा, कि लोग मुझे बाँस से पीट-पीट कर नदी की धार में ढकेलने लगे। फिर किसी ने बहुत जोर से मेरे सिर पर बाँस मारा, और मैं नदी की धार में खो गया। मुझे लगा, मैं धरती पर तड़पती हुई मछली हूँ—मुझे नदी की धार मिल गई।

[चुप देखते रह जाते हैं।]

तब मैंने अपने-आपको पुकारा। (*आवाज गिर जाती है*) पर तब तक नदी का तट सूना हो गया था। लोग घर जा चुके थे। वह ऊँचा कगार टूटकर नदी में गिर गया था ! और उस जगह केवल अकेला कमलनयन खड़ा था—तटस्थ—निर्विकार ! (*रामचन्दर की ओर-बढ़कर*) कमलनयन जीवित है ! उसे बुला लो, वह मेरे साथ चलता रहा है (*पुकारते हुए*) कमलनयन ! कमलनयन !

[रामचन्दर बाहर देखकर लौटते हैं।]

रामचन्दर : बाहर कोई नहीं है पिताजी !

हरेराम : सब उसी की दशा है ! कल इस समय···।

श्यामबिहारी : अयँ, कैसी दशा ! कल इस समय क्या ? कैसा कल ?

हरेराम : कल वही दो नवम्बर है—ठीक ग्यारह बजे रात्रि···।

श्यामबिहारी : क्या होगा कल ?

हरेराम : आप सब कुछ भूल गये, अच्छा ही है ! पर जो मृत्यु कल अवश्यंभावी है, उसके लिए हम सब विवश हैं ! आइये, आप अपने आसन पर बैठिए !

[लोग श्यामबिहारी को आसन पर बिठाने का आग्रह करते हैं ।]

श्यामबिहारी : नहीं नहीं ! मैं अब यहाँ नहीं बैठ सकता ! यह मेरा स्थान नहीं ! मैं···मैं नहीं हूँ !

[अलग हट जाते हैं । और बाहर जाने लगते हैं ।]

हरेराम : (*सामने आकर*) सरकार ! वह स्वप्न था, जिसे देखकर अभी आप उठे हैं। सत्य यह है ! आप भूल गये !

फूफा : आप जैसा कर्मठ, चरित्रवान, साहसी वीर पुरुष।

हरेराम : वह स्वप्न था !

रामचन्दर : आप सोते-सोते सहसा जगकर यहाँ आये हैं !

श्यामबिहारी : तो ?

हरेराम : वह केवल स्वप्न था !

श्यामबिहारी : कुछ भी था वह ! पर सत्य वही था ! मैंने प्रत्यक्ष भोगा है उसे !

हरेराम : उससे क्या होगा ? कल जो अवश्यंभावी है,···उस कल के लिए··· !

श्यामबिहारी : अब उस कल का मालिक मैं हूँ।

हरेराम : पर कल दो नवम्बर है, और कल रात के ठीक ग्यारह बजे·····।

श्यामबिहारी : मुझे मरना था·····। हाँ, वह हो चुका ! अब मैं फिर नहीं मरना चाहता ! (*रुककर*) मैंने इस तरह मरने के लिये जन्म नहीं लिया है !

हरेराम : सरकार, क्यों अन्त में इस भाँति माया-मोह में फँस रहे हैं ! मैं प्रार्थना करता हूँ आपसे, आइये, अपने आसन पर बैठिये। मैं कहता हूँ, आपमें जो माया-मोह पैदा हुआ है, वह श्रीमद्भागवत के शेष दोनों स्कंधों के श्रवण से सब नष्ट हो जायेगा !

श्यामबिहारी : तुम्हारा यह श्रीमद्भागवत मृत्यु से बचा लेगा ?

हरेराम : यह कैसा प्रश्न ? मृत्यु से कौन बचा है ? महाराज परीक्षित और···।

श्यामबिहारी : कौन है परीक्षित ?

हरेराम : वही द्वापर के अन्त में·····कलयुग के प्रारम्भ में···।

श्यामबिहारी : जिसे शृंगीऋषि ने तक्षक सर्प के विषदंश से मारा था··· वह मौत !

हरेराम : उसी के लिए यह धर्मग्रन्थ चिरशान्तिकारी है !

श्यामबिहारी : मृत्यु और शान्ति ! तुम्हें क्या अनुभव ? जो परीक्षित हो उससे पूछो कि वह मृत्यु क्या है ?

हरेराम : धर्मग्रंथ के विषय में अब आपको ऐसा नहीं सोचना चाहिए !

[पृष्ठभूमि में बद्दू के 'माउथ आर्गेन' का संगीत उभरता है ।]

श्यामबिहारी : बद्दू ! कहाँ हो तुम ?

[बाहर बढ़ना चाहते हैं, रामचन्दर उन्हें रोक लेते हैं। भीतर घर में से कोई दौड़ा आता है। हाथ में खाली पिंजरा है।]

एक आदमी : श्रवणकुमार उड़ गया। उड़ गया श्रवण कुमार !

फूफा : तोता उड़ गया ?

आदमी : इसी पेड़ पर उड़कर गया है। लड़खड़ाकर पहले आँगन में घूमा, फिर इसी पेड़ पर !

श्यामबिहारी : श्रवणकुमार उड़ गया ?

[फूफा घर में से टार्च लाते हैं। उसी समय बाहर से बद्दू आता है।]

बद्दू : चाचाजी, आपका श्रवणकुमार उड़ गया ! मैं अभी लाता हूँ, घबड़ाइये नहीं।

[फूफा के हाथ से पिंजरा और टार्च लेकर भागता है। पीछे-पीछे फूफाजी भी जाते हैं।]

हरेराम : देख लीजिए, इष्टफल में क्या निकला था ! मृत्यु से पहले प्रिय पक्षी से विछोह !

रामचन्दर : कितने आश्चर्य की बात है ! जो तोता इतने वर्षों से कभी नहीं उड़ा, वह आज ही सहसा क्यों उड़ा ?

हरेराम : जो अवश्यंभावी है, उसे कौन रोक सकता है ? 'सूआ बन तुमि उड़ि चले, खाली पड़ा मकान !'

[पृष्ठभूमि से बद्दू की आवाज आती है—आजा····आ···आ ! आजा !]

हरेराम : बड़े भइया, आप दौड़िये ! इष्टफल में यह भी संकेत है कि प्रिय पक्षी के मिलन बिना प्राण निकलने में अतिशय कष्ट !

श्यामबिहारी : (*जैसे सहसा कुछ स्मरण कर*) क्या ?····इष्टफल !

[बद्दू की पुनः आवाज आती है।]

रामचन्दर : मैं जा रहा हूँ।

हरेराम : हाँ देखिए, नहीं तो वह बद्दू और भी उड़ा देगा !

[रामचन्दर का प्रस्थान]

श्यामबिहारी : हरेराम !

हरेराम : हाँ सरकार ! आइये···आइये···आसन ग्रहण कीजिए। अब विलम्ब मत कीजिए। समय बिल्कुल नहीं है। मैं समझ रहा हूँ मृत्यु के भय से आप माया-मोह ग्रस्त हो चुके हैं। यह धर्मज्ञान-श्रवण आपको निश्चय ही मुक्ति देगा !

श्यामबिहारी : सच ?

हरेराम : आप आसन ग्रहण कीजिए। मैं बताता हूँ आपको !

[श्यामबिहारी उसी भाँति जड़वत् खड़े हैं। हरेराम तत्काल व्यासगद्दी पर बैठकर, ग्रंथ को उलटते हुए।]

हरेराम : 'अथ एकादश स्कन्धे। दशम अध्यायः। आत्मनः संसार-बन्धो देहाध्यासादस्तीत बोधनं जगतो मिथ्यात्व निरूपणं च'। इसका प्रकरण यह है कि आत्मा अमर और बंधनहीन है। संसार की माया और मोह ने उसे बाँध

रखा है। और द्वादशस्कंध के पंचम अध्याय में कहा गया है--'परमार्थोपदेशेन राज्ञः परीक्षितो भीति-निवारणम्' अर्थात् परमार्थ के उपदेशों से ही मृत्यु को प्राप्त होते हुए राजा परीक्षित का भय दूर हुआ।

[पृष्ठभूमि से पुनः बद्दू की आवाज आती है।]

हरेराम : सरकार, आसन ग्रहण कीजिये ! आप तो न जाने कैसे खड़े ही हैं ! क्या देख रहे हैं आप ? यह सब आपका ही स्वर्ग जाने के लिए प्रबन्ध है !

श्यामबिहारी : मेरा प्रबन्ध !

[बायीं ओर जाने लगते हैं।]

हरेराम : सरकार ! अब आपको यहाँ से कहीं जाना नहीं चाहिए ! याद कीजिए, आपका वह अन्तिम समय आ गया है !

श्यामबिहारी : मुझे इतना ही याद है कि राजा परीक्षित को यह श्रीमद्-भागवत मरने से नहीं बचा सका !

हरेराम : उन्हें शान्ति तो मिली थी !

श्यामबिहारी : पता नहीं ! (*रुककर*) परीक्षित चक्रवर्ती राजा थे। असंख्य प्रजा थी उनके पीछे--मैं तो निरा अकेला हूँ। (*भावावेश में*) फिर उन्होंने शृंगीऋषि पर अपराध किया था। मैंने क्या किया ? मैं समझता था, मृत्यु से अमरत्व प्राप्त होता है, पर वह स्वप्न था। कल रात के ठीक ग्यारह बजे मुझे मरना होगा--केवल मृत्यु।

और वह स्वप्न नहीं होगा। मैं देख रहा हूँ ज्योतिषी की एक-एक बात घटती चली जा रही है।

[हाथ में तोते सहित पिंजरा लिये हुए बद्दू आता है।]

बद्दू : चाचाजी, आपका यह श्रवणकुमार मिल गया।

[पीछे ही फूफाजी आते हैं। और भीतर जाते हुए कहते हैं।]

फूफा : श्रवणकुमार मिल गया ! (*भीतर*) मिल गया श्रवण-कुमार।

श्यामबिहारी : मिल गया श्रवणकुमार ! इष्टफल की यह भी बात पूरी हो गयी ! अब मेरा प्राण शान्ति से निकल जायेगा। पर बद्दू मेरी यह कथा अजीब है--मैं ही परीक्षित, मैं ही शृंगीऋषि, मैं ही कलयुग और मैं ही वह श्राप !

बद्दू : (*सहसा बीच ही में*) चाचाजी, यह बेचारा श्रवण-कुमार पेड़ की आखिरी डाल की आखिरी टहनी के आखिरी पत्ते पर बैठा हुआ आँसू बहा रहा था। मैंने इसे लाख बार समझाया कि अरे, हे रे नादान, रोता क्यों है ? शरीर अमर है, आत्मा नश्वर है, पर यह मानता ही न था।

हरेराम : चुप रह तू !

बद्दू : अच्छा, आप ही बोलिये।

हरेराम : बड़े भइया कहाँ रह गये ?

बद्दू : मैं क्या जानूँ। जाकर तुम खुद ढूँढ़ो न ! ज्योतिषी के घर गये हैं। पीछे-पीछे तुम भी जाओ न !

श्यामबिहारी : ज्योतिषी !

बद्दू : कोई चिन्ता नहीं चाचाजी। उस ज्योतिषी के घर अभी जमराज का एक दूत गया था। उसे देखते ही उसकी बोलती बन्द !

हरेराम : झूठ है।

बद्दू : फिर यह भी सब झूठ है।

श्यामबिहारी : नहीं, मुझे कल मर जाना है, यह सत्य है।

बद्दू : मैं आपके लिए डाक्टर लाता हूँ--मृत्यु से ऊपर भी कोई ताकत है, यह भी सत्य है।

श्यामबिहारी : डाक्टर ! औषधि !

हरेराम : तुझे ज्ञान भी है—'मंत्र तंत्र औषधि वृथा !'

बद्दू : (*गुस्से से*) तुम नहीं चुप रहोगे ?

[बढ़कर आवेश में हरेराम के मुँह को अपने गलेबन्द से बाँधने लगता है। दरवाजे पर फूफाजी आ खड़े हैं।]

श्यामबिहारी : नहीं नहीं ! उनका मुँह बाँध कर क्या होगा ? मेरे चारों ओर जब असंख्य मुँह खुले हैं। और वे सारे मुँह मुझमें समा गये हैं ! 'मंत्र तंत्र औषधि वृथा।'

[अपनी अँगूठी निकाल कर फूफाजी की ओर संकेत करते हैं।]

श्यामबिहारी : यह अँगूठी मेरी बेटी गायत्री को दे आओ !

[फूफाजी अँगूठी लेकर अन्दर चले जाते हैं।]

हरेराम : धन्य है ! आप बेटी को कोई आभूषण देने के लिए चिन्तित थे, इष्टफल ने वह भी पूरा कर दिया !

श्यामबिहारी: क्या ?

हरेराम : फल में निकला था न, कि कन्या को मृत्यु से पर्व आपके हाथ से एक आभूषण प्राप्त होगा।

[श्यामबिहारी हरेराम का मुँह देखते रह जाते हैं।]

बद्दू : इष्टफल···इष्टफल···इष्टफल ! नानसेन्स ! सुनिये हरेराम जी ! इष्टफल में यह भी निकला है कि यहाँ जमराज का

[श्यामबिहारी अपने आसन पर जाकर बैठ जाते हैं, और आँखें मूँद लेते हैं।]

दूत आयेगा--दाल रोटी खायेगा। फिर अभी आयेगा, तेरी जान निकालेगा। दूध रोटी खायेगा !

हरेराम : (सभय) नहीं नहीं !

बद्दू : (गुस्से से) हाँ···हाँ ! जमराज का दूत आयेगा !

श्यामबिहारी : बद्दू !

[बद्दू चाचाजी का वह मुँह देखकर चुप रह जाता है।]

हरेराम : 'अथ एकादश स्कन्धे, दशम अध्यायः। आत्मनं संसार-बन्धो ···।'

बद्दू : नहीं मानोगे ? अच्छा गाओ तुम ··· मैं अपना बाजा बजाता हूँ।

[बद्दू बहुत तेजी से अपना बाजा बजाता है।]

श्यामबिहारी : (*कड़े स्वर से*) बद्दू ! निकल जाओ यहाँ से ! मुझे शान्ति से मरने दो !

बद्दू : (*ठगा-सा*) चाचाजी !

[बद्दू चाचाजी को देखता हुआ चुप खड़ा है। बाहर से गोपाल का प्रवेश।]

गोपाल : पिताजी ! पिताजी !

[पिताजी ध्यानावस्थित हैं।]

गोपाल : पिताजी ! मैं चाहता हूँ कि आपकी कोई मनोकामना मेरे कारण से अधूरी न रह जाये। बद्दू, पंडितजी ! पिताजी की बहुत इच्छा रही है कि इनके जीवनकाल में ही मैं अपनी शादी कर लूँ।

बद्दू : विचार उत्तम है आपका !

गोपाल : मोहिनी के पिताजी तैयार हो गये हैं। आज ही, अभी हमारी शादी हो सकती है : सब तैयार है--बस, हमें पिताजी के आशीर्वाद चाहिए।

हरेराम : सब उसी इष्टफल की ही प्रेरणा है--'अपने जीवन काल ही में दोनों पुत्रों का विवाह !' पिताजी से शीघ्र निवेदन कीजिये।

गोपाल : पिताजी, मैं विवाह के लिये प्रस्तुत हूँ। मोहिनी के पिताजी की भी बड़ी इच्छा है कि आपके ही सामने, आपके आशीर्वादों सहित हमारी शादी हो जाय।

[श्यामबिहारी कटुता से गोपाल को देखते हैं।]

श्यामबिहारी : मेरी कोई इच्छा नहीं कि तुम मेरे सामने विवाह करो !

गोपाल : पिताजी !

श्यामबिहारी : (*आसन छोड़ते हुए*) इष्टफल की हर बात में नहीं पूरी होने दूँगा ! मैं इष्टफल से बड़ा हूँ।

हरेराम : राम राम राम ! यह क्या कह रहे हैं आप ? इष्टफल के विरुद्ध ··· !

श्यामबिहारी : हाँ हाँ, उसके भी विरुद्ध। यह विवाह मेरे सामने नहीं हो सकता ! मेरी मनोकामना पूरी करने आये हैं ! (*रुककर*) मैं जब कल रात को, इस संसार में नहीं रहूँगा, तब तुम अपनी मनोकामना पूरी कर लेना ! मेरी मनोकामना क्या थी, सब मेरे संग चुपचाप चली जायेंगी !

[आगे बढ़ने लगते हैं। दरवाजे पर फूफाजी दिखाई देते हैं।]

श्यामबिहारी: मुन्ना कहाँ है, मेरा नाती बाबा, मेरी अमरता ···? और बहू कहाँ है ? उन्हें मेरे पास भेजो !

फूफा जी : घर में नहीं हैं, कल आ जायेंगे।

बद्दू : चाचाजी, आपकी मौत के अशुभ के डर से उन्हें घर से हटा दिया गया है !

[श्यामबिहारी दरवाजे की ओर से लौटते हैं, और बाहर की ओर बढ़ते हैं।]

हरेराम : भइयाजी, इन्हें रोकिये ! इस तरह आसन छोड़कर जाना, उचित नहीं है।

गोपाल : पिताजी !

बद्दू : नहीं चाचाजी, आप बिल्कुल ठीक कर रहे हैं ! सब

को तोड़कर निकल चलिये। (*पीछे बढ़ता हुआ, सहसा मुड़कर*) नमस्ते···प्रणाम···!

[श्यामबिहारी भय से घबड़ाकर पीछे हटते हैं।]

श्यामबिहारी : कौन ? (*पिंजरा उठाते हुए*) नहीं···नहीं···नहीं···। (*बायीं ओर भागते हैं, पीछे-पीछे बद्दू और फूफाजी*)

[बाहर से सहसा रामचन्दर का प्रवेश।]

रामचन्दर : पिताजी कहाँ हैं ?

गोपाल : अभी-अभी इधर भाग कर गये हैं। जैसे उन्होंने किसी को आते हुए देखा हो! बहुत डर कर भगे हैं!

हरेराम : मुझे विश्वास था, आप ज्योतिषी महाराज को लेकर आ रहे हैं।

रामचन्दर : हाँ, गया था उनके पास। पर यहाँ आने में उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की। बद्दू ने ज्योतिषी महाराज को धमका रखा है कि अगर वह कहीं भी बाहर बद्दू को मिल जायेंगे, तो उनकी खैर नहीं है!

हरेराम : ज्योतिषी महाराज को यह धमकी ?

[सहसा बद्दू आता है।]

बद्दू : हाँ हाँ! ज्योतिषी को यह धमकी! मनुष्य होकर मनुष्य को डराने वाला! मनुष्य को छोटा बना देने वाला! वह यहाँ कभी नहीं आ सकता! और तभी मैं कहता हूँ, इतना डरपोक-कायर, जीवन और मृत्यु का रहस्य नहीं जान सकता!

गोपाल : तुम जान सकते हो ?

हरेराम : बोलो!

रामचन्दर : हाँ, हाँ, उत्तर दो, बहुत जबान चलानी आती है तुझे!

बद्दू : मैं क्या उत्तर दूँ! मैं इस संसार में जीवन-मृत्यु का रहस्य जानने नहीं आया हूँ। मैं इस संसार में महज जीने आया हूँ···बहुत साधारण आदमी हूँ मैं! आप लोगों के सिर पर ज्ञान का बोझ है—किताब वाला ज्ञान! अपने सिर पर कोई बोझ नहीं है। देखिये टोपी भी नहीं है!

[सब चुप रह जाते हैं। पर सभी बद्दू को कटुता और उपेक्षा से देखते हैं।]

हरेराम : कितने अस्थिर और विचलित हो गये हैं! वर्षों से इतना सारा प्रबन्ध करके आज समय आने पर इसका कोई उपयोग नहीं कर रहे हैं। कल तक यहाँ किसी भाँति आसन पर बैठकर श्रीमद्भागवत का श्रवण कर रहे थे, परन्तु आज सुबह से!

गोपाल : ज्योतिषी ने कुछ बताया नहीं ?

रामचन्दर : कहा कि सब कुछ इष्टफल के अनुसार घटित हो रहा है।

गोपाल : कभी नहीं! इष्टफल के अनुसार मेरा विवाह पिताजी के सामने हो जाना चाहिए था, पर क्यों नहीं हुआ ?

हरेराम : अभी कल का दिन पड़ा हुआ है, हो सकता है कि···।

गोपाल : मुझे विश्वास नहीं ! मुझे लगता है कि जैसे इस सारे चक्र में कहीं कोई असत्य का सर्प बैठा हुआ है ।

बद्दू : और वह अपने गुंजलक में एडवोकेट श्यामबिहारीदास साहब को तो बाँधे हुए है, पर याद रखियेगा, उसी के साथ हम सब की अकल मारी गई है ।

रामचन्दर : चुप रहो !

हरेराम : अज्ञानी कहीं का !

गोपाल : पर यह सत्य है कि हम सब को कहीं कोई असत्य बुरी तरह बाँधे हुए है !

रामचन्दर : गोपाल !

गोपाल : अभी थोड़ी देर पहले, जब मैंने अपने विवाह करने और पिताजी की मनोकामना पूरी होने की बात कही थी, उस समय पिताजी ने जिन आँखों से मुझे देखा था, और कहा था कि इष्टफल की हर बात नहीं पूरी होने दूँगा ! मैं इष्टफल से बड़ा हूँ, वह दृष्टि और वाणी मुझे जैसे बेधती चली गयी !

बद्दू : अभी क्या, अरे तब देखना जब यही असत्य हम सब से जीत जायेगा ! तब वह हारा हुआ जीवन हम सब तमाशबीनों से प्रश्न करेगा, कि जब मैं अपने अज्ञान में जल-भुन रहा था, तब तुम लोगों ने तमाशा क्यों देखा ? कहा क्यों नहीं कि यह झूठ है ! चाचाजी से यही कमलनयन ने कहा था, मुझे याद है, उसकी डायरी और खत मेरे पास हैं। अकेले उसने चाचाजी से कितनी

लड़ाई लड़ी थी ! और उस लड़ाई में अकेले कमलनयन को घर से बाहर निकल जाना पड़ा। और आज उसी संघर्ष का हद है, जहाँ स्वयं चाचाजी के दो भाग हो गये हैं—एक मरा हुआ, मरने वाला, दूसरा जीता हुआ, जीने वाला ! ज्योतिषी तो एक बहाना था, महज एक संयोग था, पूरे जिम्मेदार तो हम लोग हैं—हमने उनका धन बाँट लिया, सारी शक्ति ले ली ! इससे भी भयानक, किसी ने विवेक ले लिया, किसी ने धर्म हर लिया···कितना मजेदार खेल है ! हाय ! ··· हाय ! किसी की जान गयी, हमें मजा न आया ! (रुककर) कल सब खेल खत्म हो जायेगा ! ···खेल खतम·····पैसा हजम !

[जाने लगता है ।]

गोपाल : रुको ! यह सब खेल है ?

बद्दू : आप ही बताइये क्या है ? आप तो बहुत पढ़-लिखे हैं !

रामचन्दर : गोपाल, तुम इसके मुँह मत लगो !

हरेराम : छोटे भइया, आपको भी क्या हो गया ?

गोपाल : (*सबकी अनसुनी कर*) यह खेल नहीं है ! और अगर यह खेल है, तो इसे जानबूझ कर पिताजी ने खेला !

बद्दू : ठीक है ! तो आपने इस भयानक खेल का विरोध क्यों नहीं किया ?

गोपाल : विरोध करने का संस्कार हमें पिताजी ने कभी नहीं

दिया। हम पिताजी के आज्ञाकारी पुत्र थे। जो उनसे कुछ स्वतंत्र था, जिसके संस्कार अपने थे, वह उसी विरोध में घर से बाहर निकल गया। बल्कि वह घर से निकाल दिया गया!

हरेराम : हे भगवान्! आप लोग अन्यत्र जाकर ये बातें करें! यह स्थान धर्म कार्य के लिए है!

गोपाल : तुम चाहते हो कि हम भी कमलनयन की तरह जाकर कहीं आत्महत्या कर लें! अभियोगी होकर जेल और फाँसी की सजा भोगें!

बद्दू : यह तुम सोच रहे तुम, जो परतंत्र है, आज्ञाकारी है, विरोधहीन है, जो खुद नहीं है! कमलनयन जीवित है! वह कभी नहीं मर सकता!

[जाने लगता है।]

रामचन्दर : अपने खुद खिलाड़ी है न, इसीलिए यह सब को खेल समझता है!

बद्दू : (*तेजी से घूमकर*) ठीक है मैं खिलाड़ी हूँ, और आप सब महानुभाव खेल देखने वाले हैं। तो सुनिये, यह मनहूस खिलाड़ी आप सब से एक प्रश्न करता है, कि यह सब जिसे आप खेल नहीं समझते विश्वास करते हैं कि कल रात ठीक ग्यारह बजे यह समाप्त हो जायेगा, अगर कहीं वह न समाप्त हुआ तो?

रामचन्दर : क्या मतलब?

बद्दू : नहीं समझे आप? ठीक है, इसे आपने कभी नहीं सोचा होगा? सोचिये, कि कल चाचाजी का स्वर्गवास नहीं हुआ तो?

गोपाल : बद्दू!

रामचन्दर : पागल है यह!

हरेराम : अज्ञानी कहीं का! दूर हो जा यहाँ से!

बद्दू : इतना बिगड़िये नहीं, मैं कहता हूँ, महज कल्पना कीजिये कि चाचाजी कल नहीं मरते!

[हरेराम ने अपने कान बन्द कर लिये हैं, अब आँखें भी बन्द कर ली हैं।]

गोपाल : तो जियेंगे, और क्या?

बद्दू : जियेंगे? जरा आँखें खोलिये! सोचिये क्या जियेंगे? क्यों जियेंगे? किसलिये जियेंगे? और कहाँ जियेंगे? (*ठहाका मारकर हँसता हुआ*) शून्य···महाशून्य!

[सभी एक स्वर में 'चुप रहो! चुप रहो!' बद्दू तेजी से हँसता है। भीतर से फूफाजी आते हैं।]

फूफा : पिताजी कहाँ हैं? कहाँ हैं आपके पिताजी? अभी इधर से भीतर जाकर अपने पूजा के कमरे में बैठे थे।

गोपाल : फिर वहीं होंगे!

फूफा : वहाँ नहीं हैं!

रामचन्दर : अरे! ऐसा कैसे हो सकता है!

[तेजी में फूफा के साथ रामचन्दर का प्रस्थान।]

हरेराम : छोटे भइया, आप भी देखिये, पिताजी का इस भाँति

गायब हो जाना उचित नहीं है। मार्केष का आगमन हो चुका है। हृदयगति सहसा खंडित होगी। क्योंकि भय, माया-मोह दुर्बलता कल रात्रि तक अपनी चरम सीमा को प्राप्त हो जायेगी। (रुककर) यह सब इसी बद्दू की करामात है।

[गोपाल अन्दर भागते हैं ।]

हरेराम : बद्दू, तेरी हँसी भयानक है ! अशुभ है तू !

[रामचन्दर का प्रवेश ।]

रामचन्दर : भीतर कहीं पता नहीं है ! बाहर तो नहीं आये ?

[फूफाजी का प्रवेश]

फूफा : पता नहीं कहाँ चले गये ?

रामचन्दर : कारण यही बद्दू है, अगर पिताजी इस तरह कहीं गायब हुए, तो तुम्हारी सारी बदमाशी भुलवा दूँगा ! याद रखना, हाँ !

हरेराम : (*आगे बढ़ते हुए*) मूल यही है, यही ! देखिये, कैसा गम्भीर खड़ा है ! जैसे कितना सीधा है !

फूफा : बद्दू भइया, तू देख कहीं ? बहुत प्यासे थे पिताजी ! गायत्री जब पानी लेकर गयी, भीतर से तब दरवाजा बन्द था !

[सहसा गोपाल आते हैं ।]

गोपाल : फिर क्या हो गया ? घर-के-घर सब बेखबर बैठे थे !

रामचन्दर : कारण यह खड़ा है ! इसी ने यहाँ हमें अपनी बेसिर-पैर की बातों में फँसा रखा था !

बद्दू : तो ?

गोपाल : सुनो···!

बद्दू : क्या सुनें ?

रामचन्दर : सब इसी की करामात है।

बद्दू : है···तो ?

गोपाल : पिताजी को ढूँढ़ना····।

बद्दू : क्या ढूँढ़ना ?

रामचन्दर : तू जानता है उन्हें !

बद्दू : क्यों जानता है ?

गोपाल : सुनो !

बद्दू : क्या सुनें ?

गोपाल : मैं तुझसे बात नहीं करना चाहता।

बद्दू : क्यों नहीं चाहते ?

गोपाल : यों ही।

बद्दू : यों ही क्यों ?

[गोपाल आवेश में अन्दर जाते हैं ।]

रामचन्दर : अब मेरी ओर देखोगे ?

बद्दू : क्यों देखूँ ?

हरेराम : दुष्ट, भाग जा तू यहाँ से।

बद्दू : क्यों भागूँ।

हरेराम : बड़े भइया, आप शीघ्र पिताजी को ढूँढ़िये !

बद्दू : क्यों ढूँढ़ें !

रामचन्दर : तू क्यों इस तरह बोलता है ?

बद्दू : क्यों न बोलूँ।

रामचन्दर : तेरा सिर तोड़ दूँगा।

बद्दू : क्यों तोड़ देंगे ?

[रामचन्दर आवेश में बद्दू को आक्रमक ढंग से चपेट लेते हैं। बद्दू अपने बल का प्रयोग नहीं करता, वह निष्क्रिय रामचन्दर से आहत फर्श पर गिर पड़ता है ।]

हरेराम : ठीक किया ! सब इसी की करामात है।

[रामचन्दर गिरे हुए बद्दू को आग्नेय दृष्टि से देख रहे हैं।]

बद्दू : (*उठता हुआ, दर्शकों से*) और आप सब का भी यही विश्वास होगा ! ठीक है ! एडवोकेट श्यामबिहारी दास अपनी मृत्यु को यहाँ छोड़ कर कहीं भाग गये ! कोई उन्हें ढूँढ़ने नहीं गया ! रात गहरी है। ठीक है ! मैं जा रहा हूँ उन्हें ढूँढ़ने ! (*रामचन्दर से*) और मारेंगे ? नहीं ? फिर हँसिये, इस तरह मुँह बनाये क्यों खड़े हैं ! तो मैं जा रहा हूँ !

[दरवाजे पर फूफाजी लालटेन लिये दीख पड़ते हैं।]

फूफा : भइया, यह रोशनी लेते जाओ !

बद्दू : नहीं, मुझे यह रोशनी नहीं चाहिए ! मैं इसकी सीम देख रहा हूँ। क्या चाचाजी के पास रोशनी कम थी

इतने प्रसिद्ध एडवोकेट ! पढ़े-लिखे ज्ञानी !—जब वह इस अन्धकार में चले गये···।

[तेजी से चला जाता है। हाथ में लालटेन लिये हुए फूफाजी दूसरी ओर निकल जाते हैं।]

हरेराम : मैं समझता हूँ बड़े भइया, पूजा होती रहनी चाहिए ! पिताजी भाग कर कहाँ जा सकते हैं !

रामचन्दर : हाँ, वह तो सब ठीक है, पर आसन तो खाली है !

हरेराम : इससे क्या, पिताजी का चित्र तो है ही ! और अंतिम दो ही स्कंधों की तो बात है !

[रामचन्दर पिताजी का चित्र देखते हैं, हरेराम भागवत का पाठ प्रारम्भ करते हैं ।]

हरेराम : अथ एकादश स्कंधे—प्रथम अध्यायः। ऋषीणां यदुकुल संहाराय शापः ! श्री शुकदेव जी ने कहा···।

[पृष्ठभूमि से बद्दू की तेज पुकार आती है ।]

बद्दू : चाचाजी !

हरेराम : बड़े भइया, दौड़िये···आप देखिये···।

[भीतर से बहुत तेज दौड़े हुए गोपाल आते हैं, और बाहर निकल जाते हैं।]

बद्दू : (*पुकार, दूर भागती हुई*) चाचाजी !

रामचन्दर : पंडितजी, आप अपना कार्य मत बन्द कीजिये !

[भीतर दौड़ते हैं ।]

हरेराम : श्री शुकदेव जी ने कहा, हे राजा परीक्षित ! एक बार

ऐसा हुआ कि समस्त यदुवंशी उसी ऋषि के पास गये। उन्हें क्या ज्ञान वह ऋषिवर दुर्वासा हैं। सो क्या भया कि एक बालक ने स्त्री का भेष बनाकर···।

[पृष्ठभूमि से पुनः बद्दू की क्षीण पुकार आती है। भीतर से रामचन्दर बाहर दौड़ते हैं।]

हरेराम : (*अनवरत पाठ*) सो स्त्री का भेष बनाकर और पेट में लोहे की कड़ाही बाँधकर वह चंचल बालक ऋषि के पास गया। ऋषि की परीक्षा लेते हुए बालकों ने पूछा, महाराज इसके पेट में क्या है? ऋषि ने क्रोध में आकर तुरत शाप दे दिया, कि जो उसके पेट में है, उसी से तुम सब का सर्वनाश होगा! सो ऐसा हुआ कि·····।

[बाहर से घबड़ाये हुए फूफाजी दौड़े आते हैं। भीतर से दो-एक लोग इधर-उधर बाहर दौड़ते हैं। घर के भीतर से किसी स्त्री का रुदन-स्वर उभरता है। बहुत दूर से बद्दू की पुकार आती है। दोनों पूजक डर से उठकर भागते हैं।]

हरेराम : (*आसन से दौड़कर*) रुको···रुको···डरो नहीं। भय त्याग दो! रुको···रुको···!

[पर स्वयं भयभीत-से घर के भीतर जाते हैं। पृष्ठभूमि में अनेक व्यक्तियों के सम्मिलित स्वर से सारा वातावरण भारी हो जाता है। सहसा पृष्ठभूमि से यह संगीत स्वर उठता है।]

एक स्वर : जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्माद परिहार्येऽर्थे न त्वं शोचतुमर्हसि॥

[पर्दा]

तीसरा अंक

[वही दृश्य, वही स्थान। सामने दीवार पर श्यामबिहारी का चित्र अब नहीं है। अभिनय क्षेत्र में दो-तीन कुर्सियाँ रखी हैं, और शेष सब कुछ सूना उदास है।

रात के आठ बज रहे हैं।

दृश्य में बहुत कम प्रकाश है—जो है भी, वह इधर-उधर बिखर कर सिमटा हुआ है।

बायीं ओर से गोपाल का प्रवेश।]

गोपाल : (*दरवाजे की ओर बढ़कर पुकारते हुए*) भाई साहब! मुन्ना! भाभीजी! कहाँ हैं सब लोग (घूमते हुए) कौन?

[दायीं ओर से लालता का प्रवेश, अवस्था साठ वर्ष से कम नहीं]

लालता : नमस्ते सरकार, हमका आप नहीं पहिचान सकिन।

गोपाल : लालता तुम! तुम यहाँ कैसे?

लालता : अपने मालिक की सेवा में हाजिर होइ गये हैं।

गोपाल : घर में कोई नहीं है क्या? कहाँ गये हैं?

लालता : सब लोग सनीमा देखै गइन हैं। आप बैठें···।

गोपाल : मैं सीधे लखनऊ से आ रहा हूँ। पिताजी कहाँ हैं?

लालता : (*हाथ मलता हुआ*) हैं ! ··· हैं सरकार ! यहीं सड़क पर कहीं घूम रहे हैं। मैं अभी उनके पीछे-पीछे जाइ रहा था, उन्होंने मुझे मना कर दिया ··· हम वहीं खड़े होइ गयन।

गोपाल : पिताजी अब बोलने लगे ?

लालता : हाँ, भइया, मुला अभी थोड़ा ही थोड़ा।

गोपाल : तुमसे बोलते हैं ?

लालता : हाँ, क्यों नहीं भइया।

गोपाल : क्या बोलते हैं तुमसे ? किस तरह की बातें करते हैं ?

लालता : क्या बताऊँ भइया ! सब वही दैव कै महिमा हैं ! हे भगवान् तू किसी का ऐसा न बिगाड़ कि कहीं उसका नाम-निशान न रह जाय ! ऐसे धर्मात्मा, कर्मज्ञानी और आप लोग जैसन पुत्र के रहत भी हमार मालिक कहीं के न रहिन !

[रो पड़ता है ।]

गोपाल : क्या कर सकता था कोई ! अपने आगे पिताजी किसी की कभी मानने वाले थे ! सब कुछ उन्हीं की इच्छा से हुआ। तुम्हें भी याद होगा, पिताजी की स्कीम के खिलाफ तुमने केवल वह एक ही बात मुँह से निकाली थी, उन्होंने तुम्हें नौकरी से अलग कर दिया !

लालता : फिर भी भइया, मैंने बहुत नमक खाया है उनका ! जी नहीं मानता सुबह-शाम उनकी सेवा और दर्शन

के लिये चला आइत है ! बड़े भइया और बहूरानी कै का बात कही सरकार !

गोपाल : (*कुर्सी पर बैठ जाते हैं*) मैंने पिताजी को अपने सँग लखनऊ ले जाने के लिए कितना कहा, पर यह वहाँ जाते ही नहीं। इस मकान का अपना हिस्सा मैंने विवश होकर किराये पर उठाया। मैं चाहता था, पिताजी उसी में रहते। उनकी सेवा के लिए मैं एक नौकर भी रख रहा था। और मैं क्या कर सकता था ! तुम्हीं बोलो ···।

लालता : का बोलें सरकार ! कोई उनका पागल कहत है, कोई खप्ती कहत हैं।

गोपाल : अब भी हरदम कागज फाड़ते रहते हैं क्या ?

लालता : अब कागज नहीं फाड़ते ! मुला हाथ जरूर मलत रहत हैं—जैसे सब कुछ कहीं खोय गवा है।

[गोपाल एकटक शून्य में देखते रह जाते हैं।]

गोपाल : नींद आने लगी पिताजी को ?

लालता : रात को उनके सँग बद्दू भइया रहत हैं। वह बताते हैं, कुछ नींद जरूर आय जात है।

गोपाल : और भूख ?

लालता : बहुत कम ! घर में तब से अन्दर पैर नहीं रखा यहीं बाहर ही ···।

गोपाल : (*उठते हुए*) आओ, पिताजी को देखें, वह कहाँ हैं !

[गोपाल के पीछे-पीछे उन्हें रोकता हुआ ।]

लालता : नहीं-नहीं सरैकार ! आप मत जाइये ! अभी वह खुदै आय जइहैं !

[गोपाल के पीछे-पीछे वह दायीं ओर चला जाता है । क्षण भर बाद बायीं ओर से हरेराम प्रविष्ट होते हैं, बेतरह डरे हुए, उनके पीछे वही भयावह आकृति आती है ।]

हरेराम : नहीं नहीं नहीं ! मुझे क्षमा ! मैं निर्दोष हूँ !

आकृति : तू यहाँ अब क्यों आता है ?

हरेराम : नहीं नहीं, मैं यहाँ अब कभी नहीं आता !

आकृति : क्या ?

हरेराम : हाँ हाँ ! नहीं नहीं ! अब मैं यहाँ नहीं आऊँगा । अभी चला जाता हूँ···बाबू श्यामबिहारी दास जी को देखने आया था ।

आकृति : क्या कहा ?

हरेराम : देखने नहीं, यह कहने कि वह यहाँ बैठकर शान्ति से राम-राम कहें··· ।

आकृति : फिर वही राम···राम !

हरेराम : मैं आपकी शरण हूँ देव ! मुझ पर कृपा कीजिये ! मैं बहुत कष्ट में हूँ !

[दायीं ओर किसी के आने की आहट होती है ।]

हरेराम : कोई आ रहा है, मैं जा रहा हूँ···मुझे जाने दीजिये··· आप अपने स्थान जाइये, मैं अब यहाँ नहीं आऊँगा !

आकृति : तुझे क्या कष्ट है रे ?

हरेराम : दुहाई ! आपको तो महाराज पता ही होगा कि इस घर के मालिक बाबू श्यामबिहारी दास का गत नवम्बर में स्वर्गवास होने वाला था

आकृति : वह सब झूठ था !

हरेराम : हाँ हाँ, आपसे क्या छिपा है ! परन्तु मैंने उनके स्वर्गवास के सिलसिले में जितना कर्म-कांड और पूजा-पाठ किया था, सो मुझे कुल सवा सौ रुपये प्राप्त होने को था । सो मुझे कुछ भी न मिला । दो पाठ करने वाले ब्राह्मण बालक ले आया था—पाँच रुपये प्रतिदिन की मजदूरी पर—सो अलग से वह तीस रुपये मुझे अपने पास से भरने पड़े !

आकृति : ऐसा क्यों ?

हरेराम : बता रहा हूँ महाराज ! साहब के बड़े पुत्र रामचन्दर जी कहते हैं कि पिताजी की जब मृत्यु ही नहीं हुई, तो रुपये देने की अब बात ही नहीं उठती ! दुहाई महाराज की ! मैं बहुत निर्धन ब्राह्मण हूँ !

आकृति : अच्छा चल ! मैं तेरे कष्ट से बहुत प्रसन्न हुआ ! चल, मैं तेरे रुपयों का प्रबन्ध करता हूँ ! पर खबरदार, तू फिर यहाँ कभी मत आना !

हरेराम : नहीं आऊँगा महाराज, कृपासिंधु, ! पर मुझे कहीं दूर मत ले जाना ! मेरी अभी उमर ही क्या है ! मैं निर्दोष हूँ ।

[दोनों जाने लगते हैं । उसी क्षण दायीं ओर श्यामबिहारी दास जी दिखाई देते हैं : पहले से पूर्णतः भिन्न—मोछ दाढ़ी बढ़ी हुई है । सिर के बाल रूखे और अस्तव्यस्त हैं ।]

मबिहारी : रुको !

[दोनों रुकते हैं ।]

हरेराम : (*दौड़कर*) दबाइये सरकार ! भूत···भूत

ामबिहारी : बद्दू ! ···बद्दू !

[बद्दू अपना मुखौटा उठा देता है : हँसता हुआ संकोच दिखाने लगता है ।]

हरेराम : नराधम कहीं का ! तो यह तू ही था !

मबिहारी : पंडित जी, यह लीजिये अपने रुपये !

बद्दू : चाचाजी यह क्या कर रहे हैं आप ? इसीलिए आपने अपनी लाइब्रेरी बेची है ?

ामबिहारी : हाँ ! जाओ पडितजी ! गिन लो रुपये कम तो नहीं हैं ?

हरेराम : आप धन्य हैं, महापुरुष हैं···बिल्कुल ठीक हैं ! आशीर्वाद···आशीर्वाद ! सरकार बद्दू को मना कर दीजिये ···वह मुझे इस तरह न देखे ! यह मुझसे रुपया छीन लेगा !

बद्दू : सीधे से जाते हो कि नहीं ?

हरेराम : (*दुम दबाकर भागते हुए*) जाता हूँ···जाता हूँ !

[हरेराम भाग जाते हैं ।]

श्यामबिहारी : बद्दू ! जाओ अपना यह भयानक मुखौटा कहीं फेंक आओ !

बद्दू : इस संसार में रहने के लिए इस मुखौटे की बहुत जरूरत है !

श्यामबिहारी : बद्दू !

बद्दू : अच्छा···अच्छा, चाचाजी, इसे फेंक आता हूँ !

[तेजी से बाहर निकल जाता है । श्यामबिहारी उसे देखते हुए दायीं ओर बढ़ जाते हैं । दायीं ओर तभी गोपाल और लालता दीखते हैं ।]

गोपाल : पिताजी ! ···(*आगे बढ़कर*) पिताजी !

लालता : (*संकेत से मना करता है*) चुप रहो भइया जी

[श्यामबिहारी दायें मुड़कर देखते हैं ।]

ामबिहारी : कौन ?

[गोपाल बढ़कर पिताजी के चरण स्पर्श करने के लिये लपकते हैं । पिताजी सहसा एक कदम पीछे हटते हैं ।]

ामबिहारी : कौन ?

गोपाल : मैं···मैं गोपाल हूँ पिताजी ! आपको बहुत दुख हुआ । मैं आपको निश्चय ही अपने सँग लखनऊ ले जाऊँगा ।

[श्यामबिहारी—जैसे कुछ न सुनते हुए]

बिहारी : (*आगे बढ़ते हुए*) लालता ! मेरे सँग आओ !

लालता : चलिये सरकार !

गोपाल : पिताजी !

श्यामबिहारी : (मुड़कर) लालता, आपसे पूछो कि यह पिताजी किसे कह रहे हैं!

गोपाल : आपको।

श्यामबिहारी : ओह समझा! एडवोकेट श्यामबिहारी दास को! भाई, वह तो बहुत बड़े आदमी थे! बहुत बुद्धिमान, योजनाशील! आप उन्हें पुकारिये यहाँ! इसी घर में बन्द होंगे वह! आप देखिये न!

गोपाल : मुझे 'आप' क्यों पिताजी?

श्यामबिहारी : आप मुझे पहचान रहे हैं?

गोपाल : जी हाँ, आप·····।

श्यामबिहारी : कभी नहीं। आप मुझे नहीं पहचान रहे हैं। आप देख रहे हैं, उस अहंकारी, आत्मज्ञानी, चतुर, आत्मसीमित एडवोकेट श्री श्यामबिहारी दास को, जो यहाँ इस घर के एक-एक ईंट में बैठा हुआ है। जो संगमरमर के टुकड़ों पर अपना नाम अंकित कर, इस घर में बन्द है। जो अपने दोनों पुत्रों की साँसों में बँधा जी रहा है। जो केवल मरने के लिए जीवित था (रुककर) आपको पता है—उसके सुयोग्य पुत्रों ने उसके श्रवण कुमार तोते को क्या किया? उसे पिंजरे से जबरन उड़ा दिया और उसे चील-कौओं ने मार डाला!

[बाहर चले जाते हैं। लालता वापस आकर।]

लालता : भइया, इस समय तो आप जाव, सुबह आय जइहो

घर भी बन्द है, मैं का बताऊँ हुजूर! आज सड़क के सगरी लाइट भी गायब है!

गोपाल : वह कोई बात नहीं, पर सुनो लालता, पिताजी इसी तरह बोलते हैं?

लालता : नहीं सरकार! जनै क्यों, आपै से इतना बोलि गये!

गोपाल : मुझसे नहीं, वह जैसे अपने-आप से ही बातें कर गये हैं! कितना अजीब संघर्ष है! एक वह, जो बीत गया है, भोगा जा चुका है, दूसरा वह जो जी रहा है।

लालता : भइयाजी, बस अब कल सुबह आइब!

[सहसा पुनः श्यामबिहारी का प्रवेश।]

श्यामबिहारी : क्या कहा आपने? 'जो जी रहा है'! कौन जी रहा है? मैं? नहीं! (*हाथ मलते हुए*) हाँ, जीना अवश्य चाह रहा हूँ। लेकिन उस जीने का अब तक मुझे कोई अनुभव नहीं है! हरदम सोचता हूँ, जिया कैसे जाता है? जीवन जीना किसे कहते हैं? पर क्या करूँ····· सामने कोई उदाहरण ही नहीं है।

[पीड़ा से सिर हिलाते हुए इधर से उधर घूम उठते हैं, सहसा रुककर]

मौत के इस भयानक राज्य में इंसान जी कहाँ रहा है! वह तो जन्म से ही डरा हुआ है! जिस दिन से इंसान जीने लगेगा न, सचमुच यह संसार बदल जायेगा! इतना दुख, दर्द, इतना अपमान—यह सब जीवित

इंसान का सबूत नहीं है! (*हाथ मलते हुए*) पर··· पर मैं क्या करूँ! क्या होगा?

गोपाल : लालता, पिताजी को बैठाओ···इन्हें कष्ट हो रहा है।

श्यामबिहारी : कष्ट! मुझे! (*एक करुण मुस्कान, जो सहसा विलुप्त हो जाती है*) दुख-सुख की तुम्हारी अपनी कसौटी है। उससे मुझे देखने का प्रयत्न मत करो। मैं कुछ नहीं हूँ, इसलिये मेरा सुख-दुख भी कुछ नहीं है। मैं कुछ और हूँ, पर वह नहीं हूँ—जैसे सब कुछ कहीं उलट-पुलट गया है!

[बढ़कर स्नेह से गोपाल के कंधे पर हाथ रखते हुए।]

आप बैठिये, आपको अवश्य कष्ट हो रहा होगा! जिस कष्ट और दुख की बात आप मेरे लिए सोच रहे हैं न! वह सब अब मेरे लिए बिल्कुल नहीं लागू होता। मेरा दुख और ही तरह का है। बाहर से उसकी कोई दवा और उपचार नहीं है। (*एक ओर हटकर*) मेरा घर कहीं नहीं है। सब मेरा ही घर है। सब मेरे हैं, मेरा कोई नहीं है।

गोपाल : पिताजी!

श्यामबिहारी : विश्वास कीजिये, मेरा दुख अपना है, अपनी ही तरह की एक नयी पीड़ा है। उसका नियन्ता और उपभोक्ता मैं ही रहूँगा—यही तो शेष है, और इसी का सहारा भी है।

[कहकर बाहर निकल जाते हैं, पीछे-पीछे लालता जाता है। दूसरी ओर से बद्दू का प्रवेश—तेजी से 'माउथ आर्गेन' बजाता हुआ।]

गोपाल : बद्दू! सुनो बद्दू!

बद्दू : (*बाजा बन्द करता हुआ, नृत्यवत् गतियों से घूमता हुआ*)
बाप की शादी में बेटा आया, ढोल बजाया,
चुप चुप चुप
चुप चुप चुप।
काठ घोड़ पर दूल्हा आया, दूल्हन लाया
चुप चुप चुप
चुप चुप चुप।
(*जोर से ललकारता हुआ*) और सुनो भइया,
दे दे पैसा चल कलकत्ता!
प्लेटफार्म पर गाड़ी मचली, तब उसमें से मछली बोली,
चुप चुप चुप
चुप चुप चुप।

[सहसा रुककर गोपाल को मिलिट्री ढंग से सैलूट करता है।]

बद्दू : सलाम छोटे साहब!

गोपाल : बद्दू!

बद्दू : तशरीफ रखिये, खड़े क्यों हैं?

गोपाल : (*कुर्सी पर बैठते हुए*) अभी आया हूँ सीधे लखनऊ से!

बद्दू : चुपचाप शादी कर ली, हमें निमंत्रण भी न दिया। चाचाजी सही कहते थे—गोपाल मेरी मृत्यु के बाद

प्रेम विवाह करेगा। सो आपने पूरा किया—सच, बड़े आज्ञाकारी पुत्र हैं आप!

गोपाल : उनकी मृत्यु के बाद·····?

बद्दू : और क्या उनके जीवन काल में! याद कीजिये भाई साहब, गत नवम्बर के ठीक ग्यारह बजे रात का वक्त! चतुर चाचाजी इस घर से भागकर उस सूने-निर्जन रेलवे प्लेटफार्म पर बैठे थे। आप सब उनके चारों ओर खड़े थे, और उन्हें घर ले जाना चाह रहे थे। सब की आँखें घड़ियों पर टिकी थीं। चाचाजी शून्य में देखते हुए जैसे समाधि लगाये बैठे थे। बड़े भइया—रामचन्दर के हाथ में गंगाजल था। आपके हाथ में तुलसी दल। और जितने लोग वहाँ खड़े थे, सब के ओठों पर राम नाम था। मैं कुछ दूर खड़ा था, चुपचाप; क्योंकि उस समय में उस पुरुष की समाधि नहीं भंग करना चाहता था। ग्यारह बजने को आये, किसी ने जबरदस्ती उन्हें गंगाजल पिलाना चाहा, किसी ने तुलसी दल, और किसी ने तीर्थ-प्रसाद। पर चाचाजी समाधिस्थ योगी की तरह बैठे ही रहे—तभी सब लोग वहाँ चिल्लाये—'हार्ट फेल'! एडवोकेट श्री श्यामबिहारी दास का स्वर्गवास हो गया! सब चिल्लाये, पर रोया कोई नहीं! (रुककर) और उसके बाद ही वह क्षण सोचिये जब सहसा चाचाजी ने आँखें खोल दीं। आप सब का जैसे काठ मार गया। उस पुरुष से जैसे सब अपरिचि

हों! सब ने मुख मोड़ लिये! किसी ने गुस्से में गंगा-जल का पात्र फेंका। किसी ने भगवान को कोसा, किसी ने अपावन शब्द कहे।·····तूफान गाड़ी आयी··· और प्लेटफार्म को रौंदती हुई यूं चली गयी!

गोपाल : बद्दू!

बद्दू : हाँ हाँ, कितना भी अभिनय क्यों न करो, वह एडवोकेट श्यामबिहारी दास अब इस संसार में नहीं रहे। वह तो वहीं उसी प्लेटफार्म पर मर गये। हाँ,·····वहीं उसी बियाबान में छूट गये!

गोपाल : बद्दू, चुप रहो! चुप रहो!

[बद्दू हँसता है।]

बद्दू : अच्छा, छोड़िये साहब! कहिये, आपकी हनीमून की यात्रा कैसी रही? भाभीजी को संग नहीं ले आये?

गोपाल : मैं पिताजी को अपने संग लखनऊ ले जाने के लिए आया हूँ! और·····।

बद्दू : इसी बात पर एक सिगरेट पीजिये! (*देता हुआ*) नहीं पीते! बुरी चीज है! (*स्वयं जलाता है*)

गोपाल : मुझे अपनी बात तो पूरी कर लेने दो!

बद्दू : अजी छोड़िये, किसकी बातें यहाँ पूरी होती हैं! तभी देखिये न—लोगों के चेहरे बन्द किताब की तरह लगते हैं। किसी पर मोटी जिल्द चढ़ी है, किसी पर पतली और किसी पर जिल्द ही नहीं। कोई किताब

जन्म से ही फटी हुई है, और सदा उसके पन्ने हवा में उड़ रहे हैं—जैसे एक मैं ही हूँ, गौर कीजिये !

[अपना चेहरा गोपाल की ओर बढ़ाता है। गोपाल वहाँ से चले गये हैं।]

बद्दू : (*उसी मुखमुद्रा को दर्शकों की ओर घुमाता हुआ*) चले गये ! (*पुकारता है*) लालता ! मिस्टर लालता प्रसाद जी, मान्यवर महोदय एक सौ साठ···!

लालता : (*प्रविष्ट हो*) कहो भइया !

बद्दू : चलो, इस कुर्सी पर बैठो !

[स्वयं कुर्सी पर बेतकल्लुफी से बैठ जाता है।]

लालता : आप बैठें ! हम आपके सामने का बैठी !

बद्दू : मैं कहता हूँ बैठो ! 'सिट डाउन' !

[लालता संकोच से बैठ जाता है।]

बद्दू : लो सिगरेट पियो !

लालता : नाहीं हुजूर, हम तो नाहीं पीइत !

बद्दू : बुद्धू हो तुम ! अच्छा, एक मजेदार बात सुनो !

लालता : मुला धीरे-धीरे सुनाइब भइया !

बद्दू : एक लेखक साहब मेरे पास तशरीफ ले आये। कहा कि 'मैं एक प्रसिद्ध नाटककार हूँ, मुझे आपके चाचाजी के जीवन पर एक नाटक पूरा करना है।' मैंने कहा, दंडवत महाराज ! आपको कष्ट क्या है ? यह दास आपकी क्या सेवा कर सकता है ? वह कुछ उदास

होकर बोले, 'नाटक तो मैंने लिख लिया है, पर एक अजीब समस्या है—करुणरस का मैंने नाटक लिखा, हो गया हास्यरस !' मैंने कहा, चासनी कम पड़ गयी ! फिर उन्होंने कहा, 'मैंने नाटक को पूरा काट कर फिर से लिखा, हास्य रस का ही नाटक। पर हालत देखिये, हास्य रस का नाटक करुणरस का हो गया !'

[लालता आभास मात्र से पहले ही उठ गया है। सहसा श्यामबिहारी दास का प्रवेश—बद्दू हड़बड़ा कर खड़ा हो जाता है।]

श्यामबिहारी : मेरी कथा पर नाटक ? चूँकि बाहर से यह अति नाटकीय लगता है—इसीलिए क्या ? (*रुककर*) पर इस नाटक में घटना कहाँ है ? जब जीवन जिया ही न गया, तो घटना आये कहाँ से ! (*रुककर*) हाँ, फिर तुमने क्या कहा ?

बद्दू : मैं क्या कहता ! मैं तो उस समस्या से आनन्द ले रहा था !

श्यामबिहारी : अच्छे हो तुम ! (*उदास होकर, बेतरह हाथ मलते हुए*) मेरी कथा में ऐसा कुछ भी नहीं है ! यह एक ऐसी कथा है—जो अपने को मार कर अमर होना चाहती थी···(*टहलकर वापस जाते हुए*) मारकर अमर !

[प्रस्थान]

बद्दू : (*दर्शकों से*) मैंने नाटककार साहब से पूछा, 'आप कभी

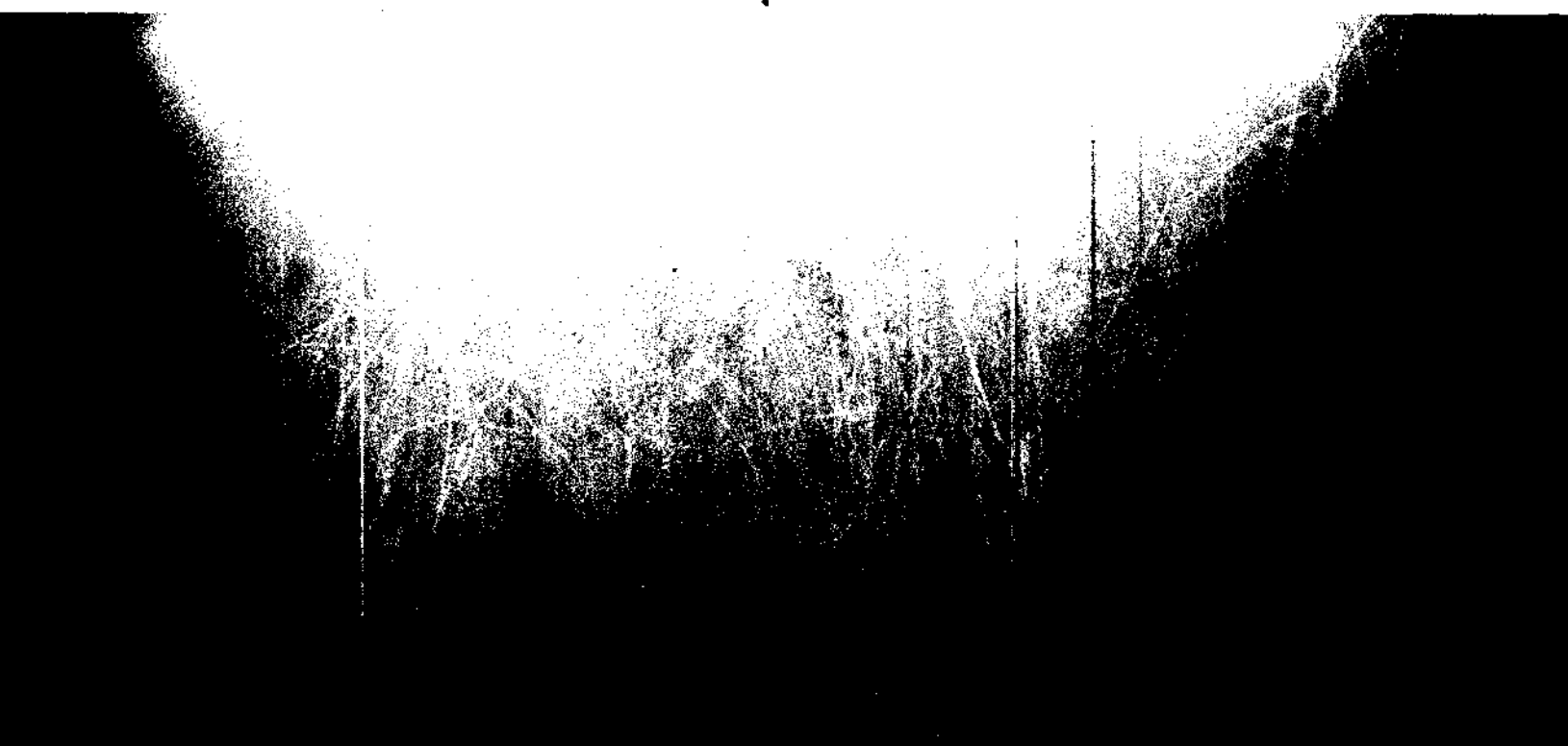

मरे हैं?' उन्होंने कहा, 'क्या मतलब?' मैंने कहा, 'मेरा सिर'! वह नाराज हो गये, कहा कि 'मत बताओ, मैं सब कल्पना से देख लेता हूँ।' मैंने उन्हें पुकार कर कहा, 'हे जी हे नाटकार साहब, यह नौटंकी नहीं है कि इसमें कल्पना कुमारी से काम चल जायगा! अजी, यह असली नाटक है—इसमें श्रीयुत दृष्टि कुमार की जरूरत है!

[लालता आता है।]

लालता : भइया जी, अब चुप रहिये! साहब एक कागज पर कुछ लिखत हइन!

बद्दू : (*प्रसन्न*) सच!

[बढ़ता है।]

लालता : (*रोकता हुआ*) न···न···भइया! न···!

बद्दू : रुको तो, घबड़ाओ नहीं! चाचाजी को नहीं मालुम हो पायेगा!

[बद्दू पंजे पर जाता है, लालता घबड़ा रहा है, क्षण भर बाद बद्दू लौटता है।]

बद्दू : (*प्रसन्नता से लालता को दूसरी ओर खींच ले जाता है*) कागज पर एक छोटी-सी मछली बना रहे हैं!

लालता : मछली?

बद्दू : बहुत छोटी-सी मछली!···पर मछली तो उन्होंने कभी देखी भी न होगी! इतने पक्के शाकाहारी···।

लालता : धीरे-धीरे बोलो भइया! वह देखिये, साहब उठिके फिर घूमै लागिन! आज रात कै वन्हें नींन कैसे आयी?

बद्दू : मुझसे गलती हुई बाबा! ओह ओ, चाचाजी ने वह सारा कागज फाड़ डाला! उसी तरह फाड़ते जा रहे हैं, जैसे पहले फाड़ते थे! इधर आ रहे हैं!

[दोनों चुप खड़े रहते हैं। चाचाजी का प्रवेश।]

मबिहारी : (*उसी तरह कागज फाड़ते हुए*) आप लोग अब घर जाइये!

बद्दू : जी हाँ, मैं जा रहा हूँ चाचाजी, लालता रहेगा यहाँ।

मबिहारी : नहीं, आप दोनों जाइये।

लालता : बँगले पर अबै यहाँ और कोई नहीं है साहब। सनीमा देखि कै जैइसे वू लोग यहाँ लौटिहैं, हम फौरन चला जाब सरकार!

मबिहारी : क्या मतलब?

बद्दू : मतलब यह कि आप यहाँ अकेले कैसे रहेंगे!

मबिहारी : मैं आज अकेले इसी अन्धकार में घूमना चाहता हूँ।

बद्दू : उससे क्या होगा?

मबिहारी : कुछ हो, तभी कुछ किया जाय! उद्देश्य लेकर तो बहुत कुछ करना चाहा था!

लालता : आज सड़क कै सगरी लाइट गायब है।

बद्दू : चाचाजी, पर अकेले इस अन्धकार में···।

मबिहारी : अच्छा नहीं होगा, यही न! हमारी कल्पना में सदा भय मिला रहता है, इसीलिए हम किसी को भी साफ

नहीं देख पाते ! (*दूसरे स्वर में*) पर सुनो ! हमारी कल्पना अधूरी है । हमारी आँखों की शक्ति सीमित है, तभी जन्म से जिस चीज को हमने जिस तरह देखा है—बस उतना ही देखा है—अन्धकार को अन्धकार··· प्रकाश को प्रकाश ! सुनो, इन सीमित आँखों से जितना हम देख पाते हैं, जीवन उतना ही नहीं है—उसके बाद से वह प्रारम्भ होता है !

लालता : तो मैं जाऊँ सरकार ?

श्यामबिहारी : हाँ जाओ । कल सुबह तुम मेरे लिये यहाँ मत आना । मैं आज ही रात को यहाँ से कहीं चला जाऊँगा—इसी अन्धकार में घूमते-टहलते ! (रुककर) बद्दू तुम, मुझे इस तरह मत देखो !

बद्दू : आपकी वाणी में वैराग्य है ! मुझे लगता है, आप एकान्त ढूँढ़कर राम और कृष्ण को शरण जाना चाहते हैं !

श्यामबिहारी : इस तरह मुझे अपमानित मत करो बद्दू ! मैंने स्वयं अपना कम अपमान नहीं किया है ! (रुककर) सुनो मेरे लिये वे राम और कृष्ण अर्थहीन हैं ! राम और कृष्ण की तुम्हारी कल्पना उनकी दी हुई है, जिन्हें मृत्यु में विश्वास था । मेरे राम और कृष्ण अनाम हैं, और मेरे असंख्य राम-कृष्ण मेरे भीतर हैं ··· यह जीवन ही अब मेरे लिए सब कुछ है !

बद्दू : थैंक्यु चाचाजी, मैं चला ! सुबह आऊँगा ···क्यों आऊँगा न ?

श्यामबिहारी : सुनो, तुम मुझसे रूठकर क्यों जा रहे हो ?

बद्दू : नहीं तो चाचाजी !

श्यामबिहारी : फिर चुपके से उदास मुख क्यों जा रहे हो ? तुम्हारे पास हरदम संगीत रहता है ! तुम सदा हँसते-गाते हो ।

[बद्दू मुँह का बाजा बजाता है । श्यामबिहारी उसे बाहों में भर लेते हैं ।]

श्यामबिहारी : माया-मोही, तुमसे मैं कभी अलग नहीं रहूँगा । जीवन के स्वरूप अनेक हैं, पर धारा वही एक है ! (*घूमते-घूमते*) बद्दू, तुमने एक दिन कहा था न, 'सारी समस्या की जड़ यह है कि हम जी नहीं रहे हैं·····।'

बद्दू : हाँ कहा था, पर···।

श्यामबिहारी : पर क्या··· !

बद्दू : ऊँची बातें करना आसान है ! ···अच्छा, नमस्ते चाचाजी !

[तेजी से बाहर निकल जाता है ।]

श्यामबिहारी : (*जैसे उसी ओर खिंचे हुए*) बद्दू ! बद्दू ! (रुककर) यह क्या है ?

[बद्दू लौटकर आता है ।]

बद्दू : क्या है चाचाजी ?

श्यामबिहारी : बद्दू, मुझे तुमसे··· !

बद्दू : इतना मोह क्यों हो रहा है, यही न ! (रुककर) चाचाजी, मैं कल सुबह यहाँ नहीं आऊँगा !

[तेजी से निकल जाता है । पृष्ठभूमि में उसके 'माउथ आर्गेन' का संगीत छा जाता है ।]

श्यामबिहारी : (*कुछ क्षण उसी दिशा में खोये रहने के बाद*) लालता !

लालता : (*तेजी से आकर*) जी सरकार !

श्यामबिहारी : तुम भी जाओ अब !

[दायीं ओर निकलते हैं, पीछे-पीछे लालता जाता है ।]

लालता : (*पुनः तेजी से आकर*) कौन ? कौन है ?

[रोशनी तेज करता है ।]

लालता : (*इधर-उधर देखकर*) कोई नहीं है !

[अतिरिक्त रोशनी बुझा देता है, फिर चला जाता है ।]

श्यामबिहारी : (*तेजी से आकर*) कौन ? कौन है ?

लालता : (*प्रवेश कर*) कोई नहीं है सरकार, हम देख लिये हैं !

श्यामबिहारी : नहीं, कोई जरूर है ! मैंने देखा है ! लालता तुम जाओ···जाओ तुम यहाँ से !

[लालता चला जाता है ।]

श्यामबिहारी : आओ···कौन हो तुम ?

[बाहर से किसी व्यक्ति का प्रवेश ।]

श्यामबिहारी : कौन ?···ओह !···कमलनयन ! क म ल न य न ! कमलनयन तुम आ गये ! मैं तुझे ही देख रहा था ! मैं तुम्हारी ही यहाँ खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था ! मुझे विश्वास था, तुम यहाँ एक बार अवश्य आओगे ! मेरा विश्वास···

[कमलनयन चुपचाप पिताजी के चरण स्पर्श करता है ।]

श्यामबिहारी : मेरे पास तुम्हारे योग्य कुछ नहीं है, मैं तुझे क्या आशीष दूँ !

कमलनयन : पिताजी !

[कमलनयन पिता को सँभाल कर वहीं कुर्सी पर बिठा देता है ।]

श्यामबिहारी : कमलनयन, तुम !

कमलनयन : हाँ, मैं !

श्यामबिहारी : लोग कहते थे, कमलनयन अब नहीं है ! उसकी फाँसी हो गयी ! कमलनयन ने आत्महत्या कर ली !

कमलनयन : लोग ठीक ही सोचते थे !

श्यामबिहारी : और उस सोचने तथा विश्वास करने का मूल मैं था !

कमलनयन : आप नहीं ! वह एडवोकेट श्यामबिहारी दास !

श्यामबिहारी : हाँ, तुम तो मिले थे उनसे !

कमलनयन : मिला नहीं था, उनसे अलग हुआ था !

श्यामबिहारी : आओ, बैठो, खड़े क्यों हो ?

कमलनयन : मुझे लौट जाना है !

श्यामबिहारी : तुम चलते-चलते थक गये हो !

कमलनयन : नहीं, मैं बिल्कुल नहीं थका हूँ ! मैं आज ही चार वर्षों की कड़ी सजा भोगकर जेल से छूट कर आ रहा हूँ !

श्यामबिहारी : कमलनयन ! (*चुप शून्य में, भरी आँखों से देखते हैं*) कमलनयन ! तुम एक बार मुझसे मिलने आये थे,

मुझे याद आ रहा है ! उस प्रसिद्ध एडवोकेट श्याम-बिहारी दास के पास !

कमलनयन : हाँ रूप बदल कर आया था !

श्यामबिहारी : फिर ? फिर क्या हुआ···

कमलनयन : जाने दीजिये ! बीते को सुनकर क्या करेंगे आप ?

श्यामबिहारी : करूँगा ! अब कुछ अवश्य करूँगा ! ···बोलो कमल-नयन ! बताओ !

कमलनयन : पुलिस ने मुझे पहली बार दफा सत्तावन, सी० आर० पी० सी० के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया···क्योंकि मैं शहर में आवारा बेकार घूमता था। एक देशी पिस्टल मेरे साथ दिखाकर पुलिस ने न्यायालय से मुझे एक साल की कड़ी सजा दिला दी !

श्यामबिहारी : फिर क्या हुआ ?

कमलनयन : मैं अपनी कथा सुनाने यहाँ नहीं आया हूँ ! मैं केवल आपके दर्शन करने आया था !

श्यामबिहारी : दर्शन ? ···दर्शन तो तुम हो कमलनयन ! बोलो, बोलो, ·····मुझे उसे छू लेने दो !

कमलनयन : उस पहली बार जेल से छूटकर मैंने एक पुस्तक की दुकान में नौकरी कर ली ! पर न जाने क्यों, पुलिस मुझे हर क्षण जैसे घूरती रहती थी। उसी वर्ष भीतर मुहल्ले में एक डाका पड़ा, जिसमें तीन व्यक्ति भी मारे गये। पुलिस ने मुझे तीन सौ दो के अन्तर्गत फिर

गिरफ्तार कर लिया, और 'सेशन' से मुझे सात साल की कड़ी सजा मिली !

श्यामबिहारी : और··· !

कमलनयन : दुकान के मालिक धीरेन्द्र बाबू ने मेरी जमानत ली और मुकदमे की अपील हाईकोर्ट में हुई। (*रुक जाता है*) तभी मैं अपने कागजात लेकर आपके पास आया था। कागज देखते ही आपने कहा था—'मैं इस तरह के झूठे मुकदमे अब नहीं लेता ! तुमने खून किया है ! हाईकोर्ट से तुम्हें'···। यह कहते-कहते आप सहसा रुक गये थे ! मैंने आपका अधूरा वाक्य पूरा करते हुए कहा था, 'फाँसी मिलनी चाहिए !'

श्यामबिहारी : कमलनयन !

[कुर्सी पर जैसे गिरने को होते हैं, कमलनयन उन्हें सँभाल कर कुर्सी पर बिठा देता है।]

श्यामबिहारी : कमलनयन !

कमलनयन : हाँ मैं वही कमलनयन हूँ··· !

श्यामबिहारी : यह नाम तुम्हें तुम्हारी माँ का दिया हुआ है !

कमलनयन : जेल में मुझे आपकी वह झूठी मृत्यु-तिथि याद थी—दो नवम्बर, ग्यारह बजे रात ! उस रात मैंने एक स्वप्न देखा था—एक छोटी-सी मछली का स्वप्न, जो एक तालाब के किनारे जमीन पर पड़ी हुई पानी के लिए तड़प रही थी। सहसा आसमान से उस पर

एक काली चील झपटी, और उस मछली को उसने अपने चंगुल में दबोच लिया। पर आसमान से एकाएक वह छोटी-सी मछली चील के पंजे से छूटकर उसी तालाब में गिर गयी!

[श्यामबिहारी दास अपनी कुर्सी से आवेश में उठ खड़े होते हैं, और अपने दोनों हाथ उठाकर नये स्वर में]

श्यामबिहारी : वह मछली मैं ही था! मैं ही था वह मछली!!

कमलनयन : आप थे या हैं?

श्यामबिहारी : नहीं, मैं था!

कमलनयन : और अब क्या हैं?

श्यामबिहारी : महज कंकाल हूँ उस मछली का, जिसे त्याग कर वह मछली फिर तालाब से नदी में चली गयी! (*कमलनयन का हाथ पकड़कर*) और वह जीवित मछली तुम हो, जिसका मैं कंकाल मात्र हूँ।

कमलनयन : नहीं! आप फिर से देखिये अपने आपको!

श्यामबिहारी : मुझे याद आ रहा है, मैंने अपने-आप को किस तरह बाँध कर रखना चाहा था—संयम, अंधविश्वास··· पूर्वग्रह···क्रोध···अहंकारी आवेश! फिर भी मैं उस जीवंत मछली को नहीं रोक सका! वह मेरे अंधकार से तड़प कर पानी में चली गयी···तुम्हारे अंतस पथ से!

कमलनयन : मैं आपसे जितनी दूर हटना चाह रहा था, आप उतने ही मेरे समीप आते जा रहे थे!

श्यामबिहारी : हम दोनों एक सूत्र में जो बँधे थे। वह मछली एक ही थी, जिसका एक अंध सीमित क्षेत्र में था, और जिसके क्रान्तिमय, व्यापक क्षेत्र तुम थे! हमें यातना देनेवाली वह व्यवस्था भी एक ही थी, जिसका एक रूप उस ज्योतिषी के बहाने में स्वयं था। और उसका दूसरा रूप शासन-न्याय के नाम पर वह अमानवीय पुलिस थी, वे अज्ञानी जज थे, वे धनलोभी एडवोकेट थे! (*कुछ शान्त रहकर*) कमलनयन, किन्तु तुम्हारी यातना मुझसे बड़ी थी।

कमलनयन : ऐसा आप क्यों सोचते हैं? हर यातना बड़ी होती है।

श्यामबिहारी : कमलनयन! तुम्हारे कमल के पीछे छिपा हुआ एक नयन मुझे देख रहा है!

कमलनयन : वह नयन आपही का है!

श्यामबिहारी : नहीं, मैं तो महज कंकाल हूँ।

कमलनयन : तो यह अतिरिक्त नयन उसी मछली का है, जिसे आप मेरे भीतर अपनी दोनों आँखों से देख रहे हैं!

श्यामबिहारी : वे आँखें भी मेरी नहीं हैं, उसी मछली की हैं। मेरी आँखों का सबूत तो वह है, कि जब तुम निरपराध—पर अभियुक्त रूप में मेरे पास अपनी मुक्ति की सहायता के लिए आये थे, तुम्हारा मन कितना बड़ा

था। पर मैंने तब तुम्हें नहीं देखा, अपने को ही देखा—वही देखा कि तुम्हें फाँसी मिलनी चाहिए! (रुककर) वह तुम्हारे नाम से मैंने अपने लिए कहा था। वह स्थिति मेरी थी!

कमलनयन : मैं कृतज्ञ हूँ आपका! केवल इसलिए नहीं कि आपने मुझे जन्म दिया, बल्कि आपने मुझे त्याग कर संघर्ष दिया। तिरस्कार देकर मुझे आत्मविकास और परिचय दिया। मुझे तभी विश्वास था, आप मरेंगे नहीं!

श्यामबिहारी : क्या पता कि मैं मरा नहीं हूँ!

कमलनयन : आपको नया जन्म मिला है : इसे आप मानते हैं न?

श्यामबिहारी : पर कोई भी जन्म अकेला नहीं है—जन्म के साथ मौत का भी जन्म होता है!

कमलनयन : ठीक है पिताजी, किन्तु कई मौतें बिना जन्म के भी जन्म ले लेती हैं!

श्यामबिहारी : (*सहसा फिर हाथ उठा कर तेज स्वर में*) किन्तु अब मैं यह नहीं होने दूँगा। मेरा यह जन्म साधारण नहीं है। सुनो कमलनयन! (*पास बढ़ते हुए*) मैं ही तुम्हारे रूप में अपने से क्रान्ति कर गृहत्यागी हो गया था! तुम्हारी सारी पीड़ा···यातना···और संघर्ष में वह मैं ही था!

कमलनयन : सत्य है!

श्यामबिहारी : और मैं ही तुम्हारी प्रतीक्षा में यहाँ इतने दिनों से खड़ा था!···कमलनयन, मैं ही वह जेल की यातना भोग कर सीधे यहाँ आया हूँ!

कमलनयन : जेल के बाहरी फाटक पर मेरे लिए कोई नहीं खड़ा था। मुझे हँसी आ गयी—मैंने देखा, मेरी सारी भावुकता मर गयी है! मुझे लगा, एक अतिरिक्त भार मेरे सिर से एकाएक हट गया है, जिसे मैं जन्म से अकारण ही ढोता चला आ रहा था।

[बढ़कर पिताजी की बाहें थाम लेता है, और उनकी हथेलियों से अपना मुख ढँक लेता है।]

श्यामबिहारी : कमलनयन!

कमलनयन : आपके संग मैं नहीं रहा, पर आप सदा मेरे साथ रहे हैं। वह मछली क्या थी, जिसका उस रात मैंने स्वप्न देखा था!

श्यामबिहारी : वह मछली मैं ही था!

कमलनयन : और आज आप क्या हैं? (रुककर) बोलिये···आप नहीं बोलेंगे···अब मैं जा रहा हूँ। मुझे जाना है। मैं केवल आपको देखने आया था।

[कमलनयन जाने लगता है। सहसा श्यामबिहारी जैसे जगते हैं।]

श्यामबिहारी : कमलनयन!···सुनो! सुनो···कमलनयन!

[लालटेन प्रकट होती है।]

लालता : सरकार !

[कमलनयन चुपचाप रुक गया है ।]

श्यामबिहारी : लालता, देखो···यह कौन है ? पहचानते हो ?

लालता : नाहीं सरकार !

श्यामबिहारी : कमलनयन !

लालता : ओह ! भइया ! !

[मंत्रमुग्ध देखता रह जाता है ।]

लालता : भइया !

श्यामबिहारी : भइया नहीं, कमलनयन !

लालता : कुछ चाय पानी लाऊँ भइया ?

[भागने को होता है ।]

कमलनयन : नहीं ! पानी धीरेन्द्रबाबू के यहाँ जाकर पीऊँगा !

श्यामबिहारी : कमलनयन !

कमलनयन : नहीं पिताजी, मुझे वहाँ शीघ्र पहुँचना है। वहाँ मेरी मुक्ति का कुछ मूल्य दिया गया है !

[जाने लगता है ।]

लालता : तो सरकार, भइया ऐसे चले जायेंगे !

श्यामबिहारी : हाँ, कमलनयन को कौन रोक सकता है ! ···लालता, तुम जाओ !

[लालता सिर झुकाये चला जाता है ।]

श्यामबिहारी : (*पास बढ़कर*) कमलनयन देखो, मेरी आँखों में

एक छोटी-सी मछली तैर रही है न ! यहाँ से एक दिन यह नदी में जायगी···फिर यह और बड़ी होगी, ··· तब यह समुद्र में चली जायेगी ! मैं वही छोटी-सी मछली हूँ, जो सदा जीती रही है--मिट्टी में, गढ़े में, तालाब में, नदी में, फिर समुद्र में ···!

[कमलनयन पिताजी के चरणों पर झुकता है--श्यामबिहारी उसे अंक में उठा लेते हैं ।]

श्यामबिहारी : कमलनयन, तुम जाओ !

[कमलनयन जाने लगता है ।]

श्यामबिहारी : क्या तुम अपने भाइयों से मिलोगे ?

[कमलनयन नकारते हुए सिर हिलाता है ।]

श्यामबिहारी : नहीं ! ···कमलनयन यह देखो, कमल से छिपा हुआ वह तीसरा नयन ! उसने कंकाल में फिर रक्त-मांस भर दिया ! कमलनयन···।

[कमलनयन जाने लगता है । उसी क्षण बाहर से रामचन्दर का प्रवेश ।]

रामचन्दर : पिताजी !

[कमलनयन जिस दिशा में गया है, श्यामबिहारी उसी ओर देखते खड़े हैं--सारा मुखमंडल प्रकाशमान है ।]

[पर्दा]

●